THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL LIBRARY

सत्य की खोज

लेखक
डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

अनुवादक
सालिगराम शर्मा

शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, लिमिटेड
आगरा।

प्रकाशक—
शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी लि०
आगरा ।

प्रथम बार
१९४८
मूल्य १)

मुद्रक—
सत्यपाल शर्मा,
कान्ति प्रेस, आगरा ।

अनुक्रमणिका

: १ :

प्रारम्भिक जीवन

मेरा जन्म ५ सितम्बर सन् १८८८ ई० में तिरुतणी नामक एक छोटे से स्थान पर हुआ था जो कि दक्षिण भारत में मद्रास नगर से उत्तर-पश्चिम में चालीस मील की दूरी पर है। मैं अपने माँ-बाप की दूसरी सन्तान हूँ। वे धार्मिक-प्रवृत्ति के थे और उनके पास अधिक धन और सम्पत्ति नहीं थी। मेरे प्रारम्भिक जीवन के बारह वर्ष तिरुतणी और तिरुपट्टी नामक तीर्थ-स्थानों में व्यतीत हुए। न जाने क्यों मुझे सदैव से इस बाह्य-जगत से परे एक ऐसे अज्ञात संसार के अस्तित्व में विश्वास रहा है जिसका अनुभव हम केवल आत्म-ज्ञान से कर सकते हैं, इन्द्रियों से नहीं। मेरा यह विश्वास कठिन से कठिन परीक्षाओं में भी अटल रहा है। मेरा मननशील स्वभाव सम्भवतः मेरे एकान्त-प्रिय होने का कारण है। सांसारिक-जीवन के अतिरिक्त मेरा एकान्त-जीवन भी है जिसमें रहना मुझे अधिक प्रिय है। पुस्तकें हमारे सम्मुख जीवन के रहस्य खोलतीं तथा भव्य स्वप्न उपस्थित करती हैं। प्रारम्भ से ही

मेरा इनके साथ घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। प्रायः लोग प्रचलित सामाजिक समारोहों में सम्मिलित होकर अपने दुःखों को भूल जाते हैं। परन्तु मुझे कभी इन समारोहों में विशेष आनन्द नहीं आया। भली-भाँति परिचित दो-एक व्यक्तियों के साथ तो बात और है पर इससे अधिक लोगों के बीच मैं विशेष चेष्टा करने पर ही अपना काम चला पाता हूँ। मुझमें एक विशेषता यह है कि आवश्यकता पड़ने पर मैं छोटे या बड़े, बूढ़े या युवक सबके साथ पूर्ण रूप से घुल मिल जाता हूँ। सचमुच मैं झेंपू और एकान्त-प्रेमी हूँ परन्तु लोग प्रायः मुझे मिलनसार और सामाजिक प्राणी समझते हैं। मेरे बारे में यह प्रसिद्ध है कि मुझे समझना कठिन है। वास्तव में इसका कारण मेरा संकोच-शील स्वभाव और सामाजिक कार्यों में झेंप है। मेरे बारे में यह भी कहा जाता है कि मैं दृढ़ सङ्कल्प वाला हूँ और सहज ही मेरे ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। परन्तु मैं जानता हूँ कि मैं इसके सर्वथा विपरीत हूँ। मैं अत्यन्त भावुक हूँ और अपनी इस भावुकता को बहुधा छिपाने की चेष्टा करता हूँ। मैं अस्थिर मति और भावुक स्वभाव का हूँ तथा मेरी मानसिक प्रतिभा साधारण है। इतने पर भी अगर सम्पादक महोदय मुझसे अपने बारे में कुछ लिखने को कहते हैं तो मैं इसे अपना सौभाग्य ही समझता हूँ। जब नेपोलियन की तीव्र-दृष्टि उन अफसरों की नामावली पर पड़ती थी जिनको उन्नति के लिये प्रस्तुत किया जाता था तो वह किसी नाम के पास हासिये में घसीट देता था "क्या वह भाग्यशाली है ?" भाग्य मेरे साथ है और अब तक यही मेरी रक्षा करता रहा है। ऐसा लगता है कि जिन तूफानों के बीच अनेक चट्टानों से टकराकर अन्य नौकाएं चकनाचूर हो गई हैं उन्हीं के बीच होकर कोई मल्लाह बड़ी सावधानी के साथ मेरी नौका खे रहा है। मुझे ऐसा अनुभव

होता है कि कोई अज्ञात शक्ति किसी महान उद्देश्य को लेकर मेरा पथ-प्रदर्शन करती रही है। मैं ऐसा नहीं कहता कि भगवान् की मेरे ऊपर कोई विशेष कृपा है। अगर इसका अर्थ यह लगाया जाय कि वह महान् शक्ति कुछ मनुष्यों का बड़ा ध्यान रखती है और उनके जीवन में व्यक्तिगत रुचि रखती है तथा उसका प्रेम भी व्यक्तिगत तथा घनिष्ट है तो यह एक मूर्खतापूर्ण बात होगी। मैं यह मानता हूँ कि जीवन में थोड़ी बहुत जो कुछ भी सफलता मुझे प्राप्त हुई है उसमें भाग्य का बड़ा हाथ रहा है। पर मैं यह नहीं चाहता कि अपनी असफलताओं का दोष भाग्य या परिस्थिति के सिर पर मढ़ दूँ। सच बात यह है कि मेरी सफलतायें पूर्णरूप से मेरे ही कारण नहीं हुई हैं। परन्तु असफलताओं के लिये मेरे निजी दोष ही उत्तरदायी हैं।

: २ :

गृह-जीवन

"अगर मनुष्य को अपनी रुचि के अनुकूल कार्य मिल जाय तथा ऐसी पत्नी मिल जाये जिससे वह प्रेम कर सके तो यह उसके जीवन की एक बड़ी सफलता है।" मुझे अपने बचपन के बाद के जीवन में दार्शनिक हेगेल के उपरोक्त कथन का प्रायः स्मरण हो आता है। एक ओर पुरुष अपना जीवन राजनीति, व्यापार, प्रेम तथा अन्य सांसारिक कार्यों में व्यतीत करता हुआ जीवन का अधिक से अधिक आनन्द लेना चाहता है, दूसरी ओर स्त्रियों को जिनके अन्दर पुरुषों की अपेक्षा कम पाखण्ड होता है, तथा जो यथार्थ के अधिक समीप होती हैं, इस बात का विश्वास होता है कि जीवन का सच्चा अर्थ बाह्य क्रिया-कलापों तक ही सीमित नहीं है। जीवन में जो सत्य है उसको वे अधिक गहराई मे देखती हैं। इसलिये उनके लिये जीवन नीरस तथा अनाकर्षक नहीं रहता। प्रकृतिवादियों का

कहना है कि हम संसार में जो कुछ देखते तथा स्पर्श करते हैं वही सत्य है। परन्तु आदर्शवादियों को कुछ उच्च तथा सार्वकालिक तत्वों में विश्वास होता है। प्रकृतिवादियों और आदर्शवादियों के बीच जो संघर्ष चल रहा है उसमें भारतीय स्त्रियाँ आदर्शवाद की ओर से लड़ रही हैं। वे शिक्षा देने की अपेक्षा अपना उदाहरण उपस्थिति करना और बातें करने की अपेक्षा उन बातों को आचरण में लाना अधिक अच्छा समझती हैं। इस प्रकार उन्होंने हमारे दैनिक जीवन में होने वाली नित्यप्रति की घटनाओं को अधिक महत्त्वपूर्ण बना दिया है। जिस उम्र में पश्चिम के देशों में प्रायः विवाह होते हैं उससे कहीं पहले मेरी पीढ़ी तथा श्रेणी के बहुत से लोगों के विवाह भारत में हो चुके थे। पर ये सभी बाल-विवाह असफल नहीं कहे जा सकते। हिन्दू-संस्कृति में पत्नी का जो उच्च तथा महान् आदर्श है उसका अमिट प्रभाव यहाँ की सरल स्वभाव वाली स्त्रियों पर अभी तक पड़ा हुआ है। "अगर पति विश्वासघात करता है तब भी मुझे स्वामिभक्त रहना चाहिये, अगर पति का मेरे ऊपर से विश्वास उठ गया है तब भी मुझे अपना प्रेम निरन्तर बनाये रखना चाहिये, अगर पति किसी अन्य स्त्री से प्रेम करने लगा है तब भी मुझे उसकी प्रतीक्षा करनी चाहिये।" अगर इस अन्धभक्ति में कुछ भी दोष है तो यही दोष उस महान् शक्ति में भी है जो हमसे उसी प्रकार प्रेम करता है तथा बड़े धैर्य के साथ हमारी उस दिन की प्रतीक्षा करता है जब हम संसार के क्षणिक सुखों से तङ्ग आकर उसके पास लौटेंगे। एक ऐसा निश्चल तथा पवित्र प्रेम जो अपने प्रेम-पात्र के दोषों पर विजय प्राप्त कर लेता है शायद सबसे बड़ी स्वर्गीय देन है। भारतीय वैवाहिक-जीवन गम्भीर प्रेम तथा मृदुता से पूर्ण है। इस देश की व्यवस्थापिका सभाओं ने सामाजिक रीति-रिवाजों में कोई हस्तक्षेप

नहीं किया है। इस कारण वे रीति-रिवाज स्थायी बन गये हैं। अगर इन रीति-रिवाजों में समयानुकूल थोड़े से परिवर्तन कर दिये जायँ तो भारतीय वैवाहिक- जीवन का महत्व अधिक बढ़ सकता है। भारतीय नारी को अपने मन और शरीर की सुरक्षा के हेतु जो कुछ भी आश्वासन प्राप्त है वह सब कुछ उनके पतियों की सद्भावना ही है। हमारी वर्तमान परिस्थितियों में यह काफी नहीं है।

: २ :

दर्शन और धर्म

क्रिश्चियन मिशनरी संस्थाओं में मैंने स्कूल और कालेज की शिक्षा प्राप्त की। अपने जीवन के महत्वपूर्ण काल में मुझे 'न्यू टेस्टामेन्ट' की शिक्षाओं से परिचय होने के साथ ही ईसाई प्रचारकों की उन आलोचनाओं का भी ज्ञान हो गया जो वे भारतीय धर्म और रीति-रिवाजों की करते थे। स्वामी विवेकानन्द के भाषणों और साहसपूर्ण कार्यों का मुझ पर बड़ा प्रभाव पड़ा और मैं अपने हिन्दू-धर्म पर गर्व करने लगा। लेकिन ईसाइयों की संस्थाओं में हिन्दू-धर्म के साथ जो दुर्व्यवहार होता था उसके कारण मेरे हृदय को बड़ी चोट पहुँचती थी। हमारे सम्पूर्ण ज्ञान और कर्म का आधार भारतीय संस्कृति है। जिन तपस्वियों और शिक्षकों ने संसार को ऐसी महान संस्कृति दी और उसके साथ संसार का सम्पर्क स्थापित किया वे वास्तव में धर्मात्मा नहीं थे—यह बात मेरी समझ में आती ही नहीं थी। मुझे तो ऐसा लगता था कि भारत के गरीब और अशिक्षित ग्रामीण जो अपने गार्हस्थ्य जीवन में प्राचीन परम्परागत रीति-

रिवाजों और धार्मिक प्रथाओं का आश्रय लिये हुए हैं वे भी उन स्वच्छन्दगामी, विलासी और बुद्धि-जीवियों से श्रेष्ठ हैं जो जीवन में बड़ी-बड़ी कामनायें रखते हैं। मानव-जीवन में जो सच्चाइयाँ हैं तथा सभी युगों के समझदार लोगों ने जिनको स्वीकार किया है उन सच्चाइयों को ये लोग अच्छी तरह जानते हैं। जीवन छोटा है और उसमें सुख अनिश्चित है। राजा से लेकर साधारण किसान तक सभी की मृत्यु होती है। अपने अज्ञान का अनुभव होना ही सच्चा ज्ञान है। धन की अपेक्षा सन्तोष श्रेष्ठ है। बड़ी-बड़ी सभाओं में भाषण देकर जनता से प्रशंसा प्राप्त करने की अपेक्षा मन की शान्ति उत्तम है। यह ठीक है कि भारतीय नारी के हृदय में अन्ध विश्वास और भय घर किये हुए हैं परन्तु सैकड़ों वर्षों की शिक्षा के परिणाम स्वरूप उन्होंने एक ऐसा सम्मान, महत्ता, पवित्रता और मानसिक सन्तुलन प्राप्त कर लिया है जो कि अनेक तत्तकालीन बुद्धि-वादी नारियों में दृष्टिगोचर नहीं होता। एक साधारण ग्रामीण जो अपने जीवन भर की सारी कमाई गंगा-स्नान या पुरी में देव-दर्शन के लिये व्यय कर देता है, जो बड़े दुःख एवं कष्ट उठाकर बनारस या कैलाश की तीर्थ-यात्रा करता है उसे इस बात का दृढ़ विश्वास होता है कि मानव-जीवन में केवल रोटी ही सब कुछ नहीं है। वर्तमान युग कृत्रिमता का युग है। यह युग अपनी सभ्यता के नशे में देवताओं और पिशाचों का, मूल्यों और आदर्शों का उपहास करता है। प्राचीन अन्ध-विश्वासों को कोई महत्व नहीं देता। लेकिन हम उन अशिक्षित हिन्दुओं की हँसी नहीं उड़ा सकते जो मूर्खतावश इन वस्तुओं को हमारे उन विचारों का प्रतीक मानते हैं जिन्हें बुद्धि से नहीं समझा जा सकता। मैं जानता हूँ कि भारत के लोग घातक-अन्ध-विश्वासों के शिकार हैं। परन्तु मैं यह स्वीकार

नहीं कर सकता कि उनमें धार्मिकता का अभाव है। इस देश की प्रत्येक माता अपने बच्चे को धार्मिक शिक्षा देते हुए कहती है कि उसे ईश्वर से प्रेम करना चाहिये; पाप से दूर रहना चाहिये; जो लोग कष्ट-पीड़ित हैं उनके साथ सहानुभूति रखनी और सहायता करनी चाहिये। हमने अपने समय का सदुपयोग करने के लिये असंख्य साधन खोज निकाले हैं। क्या यह सच नहीं है कि प्राचीन हिन्दू का मार्ग सब से अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण है? उन सार्वकालिक आदर्शों का मनन करना, ज्ञान द्वारा दिव्यता की प्राप्ति के लिये संघर्ष करना और पूर्णत्व के प्रतिबिम्ब में आनन्द लेना—क्या इस प्रकार का जीवन घृणित कहा जा सकता है?

मुझे धर्म से प्रेम रहा है। इसलिये मैं कभी उन बातों को अपवित्र तथा अविवेकपूर्ण नहीं कह सकता जिनको मनुष्य की आत्मा पवित्र समझती है। सब सम्प्रदायों का सम्मान करना और आध्यात्मिक विषयों में सबके साथ सद्व्यवहार करना—ये दोनों बातें सैकड़ों वर्षों के अनुभव से हिन्दू-परम्परा द्वारा हमारी नस-नस में समा गई हैं। प्रारम्भ से ही हिन्दू-संस्कृति में धार्मिक सहिष्णुता दृष्टिगोचर होती है। जब वैदिक-युग के आर्यों का अन्य सम्प्रदाय के लोगों के साथ सम्पर्क हुआ तो इन्होंने शीघ्र ही अपने को नवीन विचारों के अनुकूल बना लिया। वैदिक-धर्म को अपनी विशेषता का निर्माण करने में विदेशी तत्वों से बड़ी सामग्री तथा प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। हिन्दुओं के प्रसिद्ध धर्म-ग्रन्थ भगवद्गीता में स्पष्ट लिखा है कि जो व्यक्ति किसी देवता में विश्वास करता तथा उसकी भक्ति करता है वह वास्तव में परमात्मा की ही भक्ति करता है। धर्म का उद्देश्य ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करना है।

ईश्वर के विषय में जितने मत हैं वे सब उन साधकों के पथ-प्रदर्शन के लिये हैं जो अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँचे हैं। वे कुछ रूपों में ईश्वर के गुणों का प्रतिनिधित्व करते हैं—ईश्वर का नहीं। ईसाई देशों में ईश्वर का पिता का जो रूप था वह मध्य युग में माता का रूप बन गया। मेरिओलेट्री में ईश्वर को "स्वर्ग की रानी जो अपनी इच्छा के अनुसार सब कुछ कर सकती है" कहा गया है। कोई भी ऐसा सूत्र नहीं जिसमें ईश्वर को बांध दिया जाय। जो कुछ भी ज्ञान हम प्राप्त कर सकते हैं वह सब हमारे विकास के ऊपर निर्भर होता है। संकुचित दृष्टिकोण वाले व्यक्ति को एक महान् सत्य नहीं समझाया जा सकता। जब जीवन का दृष्टिकोण कुछ व्यापक किया जाता है तब वह सत्य जो पहले अपूर्ण था अधिक पूर्ण रूप में दिखाई पड़ने लगता है। सच्चा गुरु हमारे अंतर्ज्ञान को बढ़ाता है, दृष्टिकोण को बदलता नहीं। वह हमें शास्त्रों का अधिक अच्छे ढंग से अध्ययन करने के योग्य बनाता है। उल्लेख है "मनुष्य जिस किसी भी मार्ग का अवलम्बन करता है वह मेरे तक पहुँचने के लिये ही है।" विभिन्न प्रकार के जो धर्म हैं उनमें आपस में कोई विरोध या संघर्ष नहीं है। वे सब उस महान् कार्य को सम्पन्न करने के लिये एक दूसरे के सहायक ही हैं। कोई भी धर्म ऐसा नहीं है जिसमें लोगों ने ईश्वर का साक्षात्कार न किया हो। एलेग्जेन्ड्रिया के क्लीमेंट का कथन है कि सब बुद्धिमान् लोगों के हृदय में उस सर्वशक्तिशाली परमात्मा का स्वाभाविक प्रकाश होता है। ऐसे ही धार्मिक वातावरण में मेरा विकास हुआ था। मुझे इस बात से बड़ा क्षोभ होता था कि बहुत से ईसाई प्रचारक जो वास्तव में धर्मात्मा थे उन धार्मिक सिद्धांतों का उपहास करते थे जिनको अन्य लोग बड़ी श्रद्धा

की दृष्टि से देखते थे। मेरे विचार से इस दुर्भाग्यपूर्ण प्रथा का ईसा के जीवन और उसकी शिक्षाओं में कोई समर्थन नहीं मिलता। हाँ, बाद में उनके कुछ अनुयायियों ने इसको प्रोत्साहन दिया। आगस्टिन के कथनानुसार बाइबिल के बाहर जो धार्मिक सत्य हैं उनका निर्माण करने वाला शैतान है। जो लोग सब धर्मों का गम्भीरता पूर्वक अध्ययन करते हैं वे ईश्वर के सामान्य ज्ञान से अवश्य प्रभावित होते हैं। ईश्वर के विषय में जो सत्य हैं उनका उद्गम स्थान ईश्वर ही है। जिन लोगों की यह धारणा है कि उन्हीं के धर्म में ईश्वर का सच्चा ज्ञान है वे गलती पर हैं। ऐसा विचार ईश्वर के प्रेम और न्याय के विरुद्ध है। हमारा धर्म ही सर्वश्रेष्ठ है और अन्य सभी धर्मों का हमारे धर्म में समावेश हो जाता है यह बात कुछ धर्म-प्रेमी लोगों के मन में बैठी हुई है। संसार की नवीन व्यवस्था में अध्यात्म के क्षेत्र में ऐसे एकाधिकार को कोई स्थान नहीं।

ईसाई आलोचकों द्वारा की गई हिन्दू-धर्म की आलोचना ने मुझे हिन्दू-धर्म का अध्ययन करने के लिये तथा उसके जीवित एवं नष्ट तत्वों का अन्वेषण करने के लिये विवश किया। समय के प्रवाह ने मेरे इस निश्चय को और भी दृढ़ बना दिया। मद्रास विश्वविद्यालय में बी० ए० और एम० ए० की परीक्षा में दर्शन शास्त्र का जो विषय पढ़ाया जाता था उसमें भारतीय दर्शन-शास्त्र एवं धर्म का ज्ञान आवश्यक नहीं समझा जाता था। आजकल भी भारतीय विश्वविद्यालयों में भारतीय दर्शन-शास्त्र की बहुत कम शिक्षा दी जाती है। एम० ए० की परीक्षा के लिये मैंने "वेदान्त में नीति-शास्त्र" (Ethics of the Vedant) नामक शास्त्रार्थ का विषय (थीसिस) तैयार किया। आलोचकों

का कहना है कि वेदान्त में नीति-शास्त्र का अभाव है। मेरा यह ग्रन्थ ऐसी ही आलोचना के उत्तर में था। इस ग्रन्थ की रचना के समय (सन् १९०८) मैं एक बीस वर्ष की आयु का विद्यार्थी था। पुस्तक के मुखपृष्ठ पर मेरा नाम प्रकाशित हुआ। यह देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। लेकिन अब मैं जब कभी उस बचपन की अलंकारपूर्ण कृति को देखता हूँ तो मुझे शर्म आती है कि मैंने कभी ऐसा ग्रन्थ भी लिखा था। प्रोफेसर ए० जी० हौग ने जोकि आजकल मद्रास क्रिश्चियन कालिज में प्रिन्सिपल का कार्य करते हैं तथा धार्मिक विषयों में बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से विचार करते हैं मुझे एक प्रमाण-पत्र दिया जो आज भी मेरे पास सुरक्षित है। इस प्रमाण-पत्र में उन्होंने लिखा था "इस डिग्री के लिये अपने शिक्षण काल के द्वितीय वर्ष में जो थीसिस उसने तैयार की है उसे पढ़ने से प्रकट होता है कि उसको दार्शनिक समस्याओं के प्रमुख अङ्गों का विशेष ज्ञान है। अंगरेज़ी भाषा पर अच्छा अधिकार होने के साथ ही उलझे हुई तर्कों को समझने की भी योग्यता है" उस थीसिस द्वारा कम से कम मेरी सामान्य विचार-धारा का पता लगता है। जीवन को उचित ढँग से व्यतीत करने का कार्य धर्म द्वारा सम्पन्न होता है। अगर हम आत्मा को सन्तुष्ट रखना चाहते हैं और उसे बन्धन-मुक्त करना चाहते हैं तो धार्मिक-शिक्षा को अच्छी तरह देकर उसकी जड़ें मजबूत करनी होंगी। फिर धर्म अपने को युक्ति-सङ्गत विचारों, फल पूर्ण कार्यों और उचित सामाजिक नियमों द्वारा प्रकट करेगा।

सन् १९०९ में जब से मेरी नियुक्ति मद्रास प्रैसीडेन्सी कालेज में दर्शन-शास्त्र के विभाग में हुई है तब से मैं दर्शन-शास्त्र का अध्यापक रहा हूँ और भारतीय दर्शन तथा धर्म का

गम्भीरता पूर्वक अध्ययन करता रहा हूँ। मुझे शीघ्र ही इस बात का विश्वास हो गया कि धर्म एक स्वतन्त्र अनुभव है जिसको किसी अन्य वस्तु से नहीं मिलाया जा सकता। यद्यपि यह सत्य है कि धर्म अपने को नीति-शास्त्र के उच्च नियमों में प्रकट करता है परन्तु तो भी नीति-शास्त्र, धर्म से पृथक वस्तु है। वास्तव में धर्म का मनुष्य के आन्तरिक जीवन से सम्बन्ध है। उसका उद्देश्य तो यह है कि मनुष्य शुद्ध आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करे और अपने जीवन को निरर्थक बातों और निराशा से बचावे। धर्म की परीक्षा उसी के माप-दण्ड से की जा सकती है। क्या धर्म मानव-जीवन के मूल्यों को सुरक्षित रखता, जीवन को अर्थपूर्ण बनाता और मनुष्य में विश्वास पैदा करता है? इस प्रकार धर्म की परीक्षा उसी के मापदण्ड से की जा सकती है। धर्म की जड़ें मनुष्य की आत्मा में हैं जो भावना, सङ्कल्प, शक्ति और बुद्धि से गहरी हैं। आत्मा के अन्तरतम में ईश्वरीय प्रकाश दृष्टिगोचर होता है। "ईश्वर ने उस अनन्त शक्ति को मनुष्य के हृदय में स्थापित किया है।" धर्मोपदेशक ऐसा कहते हैं। उस असीमित शक्ति का ज्ञान ही धर्म का आधार है। मनुष्य की चेतना उन वस्तुओं से सन्तुष्ट नहीं होती जिन्हें आँखें देख सकती हैं और कान सुन सकते हैं। जब यह चेतना परिष्कृत हो जाती है तब वह हमें भौतिक जीवन से परे के जीवन में ले जाती है। मनुष्य चाहे कितना ही नीतिमान क्यों न हो और चाहे कितनी ही साव-धानी के साथ पुण्य कर्म क्यों न करे पर यदि उसको संसार के आध्यात्मिक उद्देश्य में विश्वास नहीं है तो वास्तव में वह धर्मात्मा नहीं कहला सकता। धर्म सत्य के स्वरूप का वह पदार्थ-ज्ञान, अन्तर्ज्ञान या सूक्ष्म पर्यवेक्षण है जो केवल कम या अधिक बुद्धि के लोगों को ही सन्तुष्ट नहीं करता वर जोन्

अपनी महत्ता का अनुभव कराने के लिये तथा संरक्षण के लिये हमारी आत्मा का सम्पर्क एक महान शक्ति के साथ कर देता है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये तीव्र आध्यात्मिक साधना और नैतिक-कर्म आवश्यक हैं। ईश्वर का दर्शन करने के लिये हृदय पवित्र होना चाहिये। सत्य के ज्ञान के लिये पाण्डित्य आवश्यक नहीं है। उसके लिये बालक का हृदय आवश्यक है। मन को पवित्र करने के लिये नैतिक कर्म-काण्ड का निर्माण हुआ है जिसके अनुकूल आचरण करने पर ईश्वर का साक्षात्कार किया जा सकता है। जब मनुष्य अपने लक्ष्य तक पहुँचता है तो आत्मा का प्रकाश होता है जिससे सारा जीवन जगमगा उठता है। तब मनुष्य के अन्दर नैतिक चरित्र और महान शक्ति आजाती है।

हिन्दुओं के कार्यों की चाहे कितनी ही आलोचना क्यों न की जाय पर हम हिन्दू-धर्म को केवल परलौकिक जीवन का नहीं कह सकते। हिन्दू-धर्म के अनुसार धर्म का उद्देश्य ईश्वर का दर्शन या ज्ञान प्राप्त करना है और नीति-शास्त्र का लक्ष्य उस ईश्वरीय नियम के अनुकूल आचरण करना है। दोनों का एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध है। उस असीमित शक्ति की चेतना उस आदर्श के प्रति प्रोत्साहन मात्र है। यह चेतना सदाचार और पवित्रता की उत्कट भावना में प्रकट होती है। आध्यात्मिक दृष्टि और सदाचार की कामना साथ-साथ चलते हैं।

महाभारत के एक श्लोक में कहा गया है कि आर्यों की विशेषता पाण्डित्य या धर्म नहीं है। वह तो आचरण है। भारतीय-दर्शन मानव-जीवन से पृथक् वस्तु नहीं है। मानव सभ्यता का उससे घनिष्ठ सम्बन्ध है। भारतीय सभ्यता सामा-

जिक जीवन में दार्शनिक ज्ञान के समावेश का प्रयत्न करती है। समय-समय पर मैं "नीतिशास्त्र की अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिका" (International Journal of Ethics), "अद्वैतवाद" (Monism), "अन्वेषण" (Quest) नामक प्रसिद्ध पत्रिकाओं में जो लेख लिखता था उसका उद्देश्य हिन्दू-धर्म के नैतिक स्वरूप का प्रतिपादन करना था। पारिवारिक प्रेम, सामाजिक प्रेम, मित्रता, विश्वास और श्रद्धा आदि अनुभव सिद्ध साधनों के द्वारा आध्यात्मिक मूल्यों की अनुभूति होती है। जो लोग वास्तव में धर्मात्मा हैं उनका समस्त जीवन एक पवित्र धार्मिक क्रिया है। आजकल समाज की सामान्य स्थिति को सुधारने के लिये जो प्रयत्न किये जाते हैं तथा दुःखी और कष्ट-पीड़ित लोगों को सुखी बनाने के उद्देश्य से समाज के स्वरूप को परिवर्तित करने के जो यत्न किये जाते हैं वे सब हिन्दू-धर्म के विरोधी नहीं हैं। सच बात यह है कि हिन्दू-धर्म उनकी माँग करता है।

कुछ लोग कहते हैं कि हिन्दू-धर्म में जो मायावाद है उसका नीति से विरोध है। मायावाद के सिद्धान्त का ऐसा अर्थ गलत है जिसमें उसका नीति-शास्त्र से विरोध होता है। मायावाद का सिद्धान्त यह घोषणा करता है कि संसार की रचना ईश्वर से हुई है और उसका अस्तित्व भी उसी पर निर्भर है। संसार का स्वरूप नित्य परिवर्तित होता रहता है परन्तु ईश्वर का नहीं। इसलिये ईश्वर के सामने संसार का दर्जा छोटा है। हम किसी भी अवस्था में उसको तथा मायावी संसार को एक नहीं मान सकते। मायावाद के सिद्धान्त का प्रचार करने वाले श्री शंकराचार्य जी ने बड़ी सावधानी के साथ संसार के बाह्य-स्वरूप को सत्ताधारी ब्रह्म और सत्ताहीन स्वप्नों

तथा भ्रमों से पृथक किया है। श्री शंकराचार्य जी के अतिरिक्त वेदान्त के सिद्धान्त का प्रतिपादन करने वाले अन्य दार्शनिक हुए हैं जो मायावाद के सिद्धान्त को इस सीमित अर्थ में भी स्वीकार नहीं करते।

हिन्दू नीतिशास्त्र और मायावाद के सिद्धान्त में मुझे श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर की रचनाओं से बड़ी प्रेरणा मिली। मैंने उनकी रचनाओं के अँगरेजी अनुवाद पढ़े और परिणामस्वरूप एक पुस्तक लिखी जो सन् १९१८ में मैकमिलन (लन्दन) ने प्रकाशित की। युवावस्था में अपरिपक्व विचार होने के कारण जो भी दोष हो सकते हैं वे सब इस पुस्तक में थे। पर तब भी जनता ने इसका स्वागत किया। टैगोर ने भी बड़ी उदारतापूर्वक सन् १९१८ में लिखा "जिस पुस्तक का सम्बन्ध मुझ से है उसकी आलोचना करना ठीक नहीं। पर मैं इतना कह सकता हूँ कि यह पुस्तक आशा से अधिक सुन्दर है। पुस्तक लिखने में आपने जो परिश्रम किया है तथा सूक्ष्म पर्यवेक्षण का परिचय दिया है उससे मुझे आश्चर्य हुआ है। आपकी भाषा में साहित्यिक सौन्दर्य है और वह व्यर्थ के अलङ्कार तथा आडम्बर से मुक्त है। मैं इसके लिये आपको धन्यवाद देता हूँ।"

सन् १९१८ में मैसूर के नये विश्वविद्यालय में मैं दर्शन-शास्त्र का प्रोफेसर नियुक्त हो गया। अब तक के अध्ययन के आधार पर मैंने धर्म का आध्यात्मिक तथा व्यापक रूप स्वीकार किया। न तो किसी के व्यक्तिगत ज्ञान को धर्म कहा जा सकता है और न जनता द्वारा थोपे हुए विचारों को ही। धर्म तो वह है जो स्वाभाविक रूप में अन्तर्ज्ञान और अनुभूति से उत्पन्न होता है। मुझे इस बात का विश्वास होगया कि दर्शन-शास्त्र हमें धर्म में ईश्वर का अखण्ड रूप स्वीकार करने को

कहता है। अनेकत्व का प्रतिपादन करने वाले आदर्शवाद में (Pluralistic Idealism) मनुष्यों और देवताओं की आत्मा को अत्तय और अमर माना जाता है और ईश्वर को इन सब आत्माओं का प्रधान। [अनेकत्व का प्रतिपादन करने वाला विज्ञानवाद (Pluralistic Idealism) ईश्वर को देवताओं तथा मनुष्यों का अनन्त आत्माओं के रूप में प्रधान मानता है] यदि दर्शन-शास्त्र इस प्रकार के आदर्शवाद को स्वीकार करता है तो कहना होगा कि वह परम्परागत विचारों से प्रभावित है। बर्गसाँ के दार्शनिक विचारों के सम्बन्ध में मैंने "माइन्ड" (Mind) नामक पत्रिका में अनेक क्रम-बद्ध लेख प्रकाशित कराये। इन लेखों में मैंने बतलाया कि वह ईश्वर के अखण्ड रूप (Absolutist) में विश्वास करता था। इसी दृष्टिकोण से मैंने लाइब्नियस, जेम्स वार्ड, विलियम जेम्स, रूडोल्फ यूकेन हेस्टिंग्स, रैशडेल, बरट्रन्ड-रसैल, लार्ड बैलफौर इत्यादि के दार्शनिक विचारों की परीत्ता की। मैंने बतलाया कि लोग जो अनेकतावादी आस्तिकता का समर्थन करते हैं उसका कारण यही है कि उनकी दार्शनिक खोज में धर्म ने हस्तत्तेप किया है। मैंने इस विचार को "तत्कालीन दर्शन-शास्त्र में धर्म का प्रभुत्व" (The Reign of Religion in Contemporary Philosophy) नामक ग्रन्थ में (मैकमिलन १९२०) लिखा। इस पुस्तक का बड़ा स्वागत हुआ। प्रसिद्ध समालोचकों ने इसकी अत्यधिक प्रशंसा की। जे० एच० म्यूरहैड, जे० एस० मेकेन्जी और जे० ई० सी० एम० सी० टैगरैट जैसे प्रसिद्ध दार्शनिकों ने प्रशंसात्मक समालोचना की। इनके अतिरिक्त अमेरिका के प्रोफेसर हिनमैन ने अमेरिका के दर्शन-सम्मेलन में सभापति के पद से बोलने के लिये "बोसाँन्क्वे और राधाकृष्णन् प्रमुख आदर्शवादियों को" चुना। बोसाँन्क्वे के साथ नाम लिया

जाना यह एक ऐसा सम्मान है जिसको पाने के लिये बड़े-बड़े लोग ईर्ष्या करेंगे। भारत के अतिरिक्त इङ्गलैंड और अमेरिका के विश्वविद्यालयों के विद्यार्थी भी इस पुस्तक को अध्यात्म-विद्या के विषय में पढ़ने लगे। अब मैं दर्शन-शास्त्र का कुछ ख्याति-प्राप्त लेखक समझा जाने लगा।

सन् १९२१ में कलकत्ता विश्वविद्यालय में मुझे मनोविज्ञान और नीतिशास्त्र के अध्यापन के लिये सम्राट् जार्ज पंचम के नाम वाला पद प्राप्त हुआ। यह भारतवर्ष में दर्शन-शास्त्र का सबसे बड़ा पद था। प्रोफेसर जे० एच० म्यूरहेड ने—जिनको मैं अधिक श्रद्धा की दृष्टि से देखता हूँ—मुझसे भारतीय-दर्शन का क्रम-बद्ध तथा सुन्दर इतिहास लिखने का आग्रह किया। यह पुस्तक वे अपने दर्शन-शास्त्र के प्रसिद्ध पुस्तकालय के लिये चाहते थे। सन् १९०८ से मैंने इस विषय का विशेष अध्ययन किया और इस ग्रन्थ को दो भागों में प्रकाशित कराया। अब यह ग्रन्थ दूसरी बार प्रकाशित हो रहा है। सैकड़ों सूक्ष्म बातों को रचनात्मक प्रणाली से परस्पर सम्बद्ध करके रखने का काम आसान नहीं है। इस ग्रन्थ की रचना में मेरी आकांक्षा केवल इतिहास लिखने की ही नहीं थी। मैं अपनी व्याख्या द्वारा विभिन्न दार्शनिकों के विचारों में जो एक दूसरे को मिलाने वाली कड़ियाँ हैं उनको दिखलाना भी चाहता था। शुद्ध और स्पष्ट अंतर्ज्ञान के क्षणों में दार्शनिक जिन बातों को कहते हैं उन्हें ध्यान में रख कर ही दार्शनिकों के विचारों की आलोचना करनी चाहिये। यही सबसे अच्छा तरीका है। जिस प्रकार अन्य रचनात्मक कलाकारों की समालोचना होती है उसी प्रकार सर्वोत्तम प्रेरणाओं के आधार पर दार्शनिकों की भी समालोचना होनी चाहिये। एक महान विचारक को समझने के लिये यथेष्ट सहानुभूति

होनी चाहिये और हमें अपने को उसी की स्थिति में रखना चाहिये। हमें उसकी जानकारी होनी चाहिये तथा उसकी भावनाओं और विश्वासों का सम्मान करना चाहिये। जब तक हमें इस बात का ध्यान रहेगा कि हम नवीन युग के प्राणी हैं और हमारे अन्दर वे दोष तथा अवगुण नहीं हैं जो प्राचीन काल के लोगों में थे तब तक हमारे हाथ कुछ भी नहीं लगेगा। उन विचारकों का केवल हास्यास्पद चित्र ही प्राप्त होगा। चाहे हम दर्शन-शास्त्र का इतिहास ही क्यों न लिखते हों हमें याद रखना चाहिये कि सब प्रकार की रचनाओं की जननी नम्रता है। मुझे प्रसन्नता है कि मैंने हिन्दू-धर्म के विचारों को मानव-जाति के विचारों की सामान्य-धारा से मिलाने के प्रयत्न में कुछ अंशों में सफलता प्राप्त की है। एक समय था जब हिन्दू धर्म के विचार विचित्र और प्राचीन समझे जाते थे। लोगों की यह भी धारणा थी कि इन विचारों में वह शक्ति नहीं है जिससे ससार में आध्यात्मिक जागृति की जा सके। परन्तु अब लोगों के ऐसे विचार धीरे-धीरे मिटते जा रहे हैं। प्राचीन काल के भारतीय हमसे पृथक् किसी अन्य जाति के नहीं थे। उनके विचारों का सही-सही अध्ययन करने पर पता लगता है कि वे लोग हमारे ही अनुरूप वर्तमान विचार-धारा से सम्बन्ध रखने वाले विभिन्न प्रकार के प्रश्न पूछते तथा उत्तर प्राप्त करते थे। अब भारतीय-दर्शन, दर्शन-शास्त्र का एक महत्त्वपूर्ण विषय माना जाता है। एनसाइक्लोपेडिया ब्रिटेनिका (चौदहवां प्रकाशन) के सम्पादकों तक ने अपने ग्रन्थ में इस विषय को स्थान दिया और मुझसे भारतीय दर्शन पर एक लेख लिखने को कहा।

मैं 'हिबर्ट जर्नल' में लेख लिखा करता था। इसलिये उसके सम्पादक एल० पी० जैक्स के सम्पर्क में आया जो पहले

मेनचेस्टर कालिज आक्सफोर्ड के प्रिन्सिपल थे। उन्होंने सन् १९२६ ईस्वी में अपने कालिज में उदारतापूर्वक मुझ से "जीवन के प्रति हिन्दू का दृष्टिकोण" (Hindu View of Life) शीर्षक से अप्टन लैक्चर देने को कहा। मैं उनका निमन्त्रण स्वीकार करने की स्थिति में था क्योंकि कलकत्ता विश्वविद्यालय ने मुझको वहाँ पर सन् १९२६ में ब्रिटिश साम्राज्य के विश्वविद्यालयों की कांग्रेस में प्रतिनिधि बना कर भेजा। इसके अतिरिक्त सितम्बर सन् १९२६ में हार्वर्ड विश्व विद्यालय की फिलासफी की कांग्रेस में भी भेजा। यूरोप और अमेरिका जाने का यह मेरा प्रथम अवसर था। मुझे इस यात्रा की अनेक मधुर स्मृतियाँ हैं। आक्सफोर्ड, केम्ब्रिज, हार्वर्ड, प्रिन्सटन, येल और शिकागो इत्यादि स्थानों में मेरा जो हार्दिक स्वागत हुआ उसकी अभी तक याद है।

"जीवन के प्रति हिन्दू का दृष्टिकोण" इस विषय पर मैंने जो व्याख्यान दिये उसमें मैंने बतलाया कि हिन्दू-धर्म एक प्रगतिशील ऐतिहासिक आन्दोलन है जिसका अभी तक निर्माण हो रहा है। इस धर्म के अनुयायी एक कोष के संरक्षक नहीं हैं अपितु वे सन्देशवाहक हैं जिनके हाथ में जलता हुआ दीपक है। हिन्दू-धर्म में जो दुर्बलताएँ हैं तथा जिन्होंने इस धर्म का अपमान कराया और सामाजिक प्रगति को रोका है उसका कारण यही है कि हमने परम्परा और सत्य के भेद को भुला दिया है। हमें सत्य की भावना की रक्षा करनी होगी जो कि अन्त में सत्य तक ले जायगी। ईश्वर कभी अपने को परम्परा नहीं बतलाता। वह तो हमेशा यही कहता है "मैं सत्य हूँ।" सत्य की शिक्षा देने वाले बड़े-बड़े शिक्षकों से भी सत्य महान् है। हमें यह बात समझ लेनी चाहिये कि मानव-जाति का इतिहास ऐसे रीति-रिवाज और परम्पराओं से भरा

हुआ है जो पहले बड़े मूल्यवान् थे पर बाद में अपना मूल्य खो बैठे। अब भी अनेक बड़ी-बड़ी बुराइयाँ वर्तमान हैं जिन्हें निस्सङ्कोच नष्ट कर देना चाहिये। नैतिक और बौद्धिक दोनों प्रकार की प्रगति में हिन्दू-धर्म को विश्वास रहा है। हम इस धर्म को निराशावादी या भाग्यवादी नहीं कह सकते। कर्म का सिद्धान्त मानता है कि वर्तमान में भूत अप्रत्यक्ष रूप से बना हुआ है। जब हम हम बिना सोचे-समझे यन्त्रवत् भूतकालीन प्रवृत्तियों का अनुसरण करते हैं तब हम अपनी स्वतन्त्रता का उपभोग नहीं करते। परन्तु हम अपनी स्वतन्त्रता को तब प्रयोग में लाते हैं जब स्वयं सोच-समझ कर सावधानी के साथ कार्य करते हैं। मैं विभिन्न आलोचकों द्वारा की गई हिन्दू-धर्म की आलोचनाओं का यहाँ वर्णन करना नहीं चाहता क्योंकि उनकी मुख्य-मुख्य बातें मैंने अपनी उस पुस्तक में दे दी हैं।

सितम्बर १९२६ ई० में हार्वर्ड विश्व विद्यालय में होने वाले दर्शन-सम्मेलन की आम-सभा में मैंने जो भाषण दिया था उसमें बतलाया था कि वर्तमान सभ्यता में अध्यात्मवाद का अभाव है। मैंने अपने इस विचार को कुछ विस्तार के साथ अपनी छोटी सी पुस्तक 'कलकी' या "सभ्यता का भविष्य" में लिखा था। पिछली कुछ शताब्दियों में संसार के बाह्य-रूप में शीघ्रता से बड़ा परिवर्तन हो गया है। बाह्य-जीवन के निर्माण में विज्ञान हमारी बड़ी सहायता करता है। पर आत्मिक सुधार के लिये किसी अन्य वस्तु की आवश्यकता है। यद्यपि हमने बौद्धिक ज्ञान और वैज्ञानिक आविष्कारों में बड़ी प्रगति की है पर हमारे नैतिक और आध्यात्मिक जीवन का स्तर अपने पूर्वजों से ऊँचा नहीं हुआ। शायद कुछ बातों में तो हम अपने प्राचीन मापदण्डों से नीचे गिर गये हैं। हमारी आदतों में जड़ता आ गई है। हम भीतर से खोखले

हो गये हैं। हम समाज के एक अत्यन्त सूक्ष्म भाग हैं—एक भीड़ के सदस्य हैं। व्यवहारवादी मनोविज्ञान (Behaviourist Psychology) का कथन है कि मनुष्य के भीतर आत्मा जैसी कोई वस्तु नहीं और उसका अध्ययन बाह्य क्रिया-कलापों से किया जा सकता है।

समाज के पुनर्सङ्गठन के लिये वर्तमान काल में जो प्रयत्न हो रहे हैं उनमें भी यही खतरा है। यद्यपि आज मनुष्य जगत् से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करा लेता है, पदार्थों के उत्पादन और वितरण में आधुनिक विज्ञान का प्रयोग करता है इससे सब लोगों को अपने भौतिक कल्याण की आशा होने लगी है। उन्हे ऐसा लगता है कि दरिद्रता जड़ से नष्ट हो जायगी। पर सच बात यह है आज भी सैकड़ों मनुष्य ग़रीबी और भूख से मर रहे हैं। समाज की इस अस्त-व्यस्तता का कारण मैत्री और सहयोग की भावना का अभाव है। रूस के प्रयोग के विषय में हम चाहे कुछ भी सोचें पर इतना तो मानना ही होगा कि वह समाज के सब लोगों को समान आवश्यक भौतिक-पदार्थ प्रदान करने की दिशा में एक सच्चा प्रयत्न है। दरिद्रता और सम्पन्नता के बीच जो महान अन्तर है उसको रूस के लोग अनिवार्य नहीं मानते। फासिज्म तक एक ऐसे सच्चे साम्यवादी जीवन का निर्माण करने का प्रयत्न कर रहा है जिसमें सब लोगों के साथ शक्ति, धन और सुविधा के वितरण में अधिक से अधिक न्याय किया जा सके। परन्तु पारस्परिक संघर्ष और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का अपहरण यही इन प्रयत्नों के दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम हैं। मानसिक मापदण्ड निश्चित हो चुका है, आत्म-विश्वास नष्ट हो गया है और सामूहिक मुक्ति खोजने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो गई है। केवल इच्छानुकूल जीवन बनाने की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का ही अपहरण नहीं हुआ अपितु

इच्छानुकूल विचार करने और उनको प्रकट करने की भी स्वतन्त्रता नष्ट करदी गई है। समाज एक कैदखाना बन गया है। हम स्वीकार करते हैं कि इन जीतोड़ कोशिशों में मानव जाति के प्रति सहानुभूति तथा आर्थिक शोषण रोकने की इच्छा है परन्तु अगर हमारा समाज स्वार्थ, घृणा, धृष्टता और अन्ध विश्वास जैसी नीच प्रवृत्तियों के आधार पर बना तो ऐसा आर्थिक शोषणहीन समाज भी दानवी होगा। न्योचित आर्थिक व्यवस्था के निर्माण के लिये हमें पूर्ण प्रयत्न करने चाहिये पर साथ ही यह बात नहीं भूल जाना चाहिये कि मनुष्य का आर्थिक जीवन ही पूर्ण जीवन नहीं है। मनुष्य के पूर्णत्व के लिये यह अपेक्षित है कि हम एक ऐसे समाज का निर्माण करें जहाँ प्रत्येक प्राणी में एक दूसरे के प्रति प्रेम और श्रद्धा हो और पुनर्जीवित मानवता की निष्काम सेवा का भाव हो। अगर हम इस संसार में व्यवस्था और न्याय का राज्य देखना चाहते हैं तो आत्मा को आन्तरिक शान्ति प्राप्त करने के योग्य बनाना होगा अगर आत्मिक अशिक्षा वर्तमान है तो केवल शरीरिक योग्यता और मानसिक सतर्कता दोनों घातक हैं। अगर आत्मिक जीवन नष्ट हो जाता है तो प्रगति का कोई अर्थ नहीं रहता। मनुष्य अपने जीवन का भौतिक आवश्यकताओं के अनुकूल किस प्रकार निर्माण कर सकता है इसका एक चित्र एल्डस हक्सले की पुस्तक "ब्रेव न्यू वर्ल्ड" (Brave New World) में मिलता है। परन्तु ऐसे जीवन में सृजन कार्य प्रयोगशाला की बोतलों में होगा और पारिवारिक जीवन, कला और साहित्य, दर्शन और धर्म और सभी आध्यात्मिक बातों का कोई स्थान नहीं होगा। हमारी सभ्यता पर आज जो संकट छाया हुआ है उसका कारण यही है कि हमने अपने नैतिक और आध्यात्मिक आदर्शों में शिथिलता कर दी है।

आज हम सभ्य जगत में ऐसी घटनाएँ देखते हैं जो अन्धकार-युग के बुरे से बुरे कालों का स्मरण दिलाती हैं। परमेश्वर को अपने आसन से हटा दिया गया है और उसके स्थान पर जाति तथा राष्ट्र के नये देवता स्थापित किये गये हैं। मनुष्यों की आत्मा सामूहिक भ्रान्त धारणाओं से विषाक्त और विकृत हैं। वे उनकी भावनाओं का नियन्त्रण करती हैं, निराधार आशाओं को प्रस्तुत करती हैं, एक बहिर्गत और आत्म से महत्तर ध्येय के प्रति तीव्र एवं रागात्मक भक्ति की माँग करती हैं और ऐसे धर्मों का कार्य करती हैं जिनमें जीवन को प्रकाश देने और संकल्प को कार्यरूप में परिणत करने की शक्ति होती है। थोड़े से लोग जिन्हें मानवता के ऐक्य में विश्वास है और जो पड़ोसियों के सुख और दुःख को अपना ही अनुभव करते हैं वे ऐसे लाखों व्यक्तियों के बीच घिरे हुए हैं जिनको इस विचार का अभ्यस्त होने की शिक्षा दी गई है कि मानवता एक ऐसे संघर्षप्रिय समुदायों का समूह है जिनकी शक्ति का परीक्षण युद्ध द्वारा होता है। राष्ट्रों की विनाशकारी प्रतिद्वन्द्वता के साथ शस्त्रीकरण की भयंकर प्रतियोगिता भी चलती है। शस्त्रों का निर्माण प्रयोग करने के लिये नहीं होता— ऐसा सोचना एक निरर्थक आत्म-प्रवंचना है। जिस प्रकार भोजन करने वाले एक पशु के लिये मल-विसर्जन अनिवार्य है उसी प्रकार हम भी शस्त्रों के निर्माण के उपरान्त उनका प्रयोग किये बिना नहीं रह सकते। जिस गति से युद्ध की तैयारियाँ हो रही हैं और मनुष्यों की पाशविक भावनाओं को उभाड़ा जा रहा है उससे ऐसा प्रतीत होता है कि एक ऐसी भयंकर विपत्ति समीप आ रही है जिसकी तुलना में गत महायुद्ध एक खिलवाड़ लगेगा।

फिर भी यह बुद्धिमानी नहीं होगी कि हम पतन को

अनिवार्य परिणाम मानकर उससे बचने का प्रयत्न ही न करें। यह तो पतन को लाने का सुनिश्चित मार्ग होगा। शान्ति को छोड़कर संसार में कोई वस्तु ऐसी नहीं जो अवश्यम्भावी हो। इसी शान्ति की संसार को परम आवश्यकता है। प्रकृति के भूकम्प जैसे विचित्र रहस्य हैं जिनपर अधिकार करने में मनुष्य असमर्थ है। अनेक प्रसिद्ध विज्ञानवेत्ता प्रकृति के ऐसे ही रहस्यों के गुप्त कारणों के अध्ययन करने के लिये सम्पूर्ण जीवन अर्पित कर देते हैं। फिर युद्ध तो मानवीय कृति है और हमारा कर्तव्य है कि उसके कारणों का अनुसन्धान करें।

समाज के वर्तमान संगठन में कोई मौलिक भूल है। वह यथेष्ट प्रजातन्त्रात्मक नहीं है। प्रजातन्त्र का आधार व्यक्ति के महत्व को स्वीकार करना है। वह इस बात पर ज़ोर देता है कि न तो कोई व्यक्ति इतना भला है कि उसके हाथों में असीमित शक्ति सौंप दी जाय और न कोई राष्ट्र इतना भला है कि वह अन्य राष्ट्रों पर शासन करता रहे। परन्तु समाज का वर्तमान राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय संगठन इस सिद्धान्त को मानकर चलता है कि शक्ति सम्पन्न लोग जो कुछ करना चाहते हैं कर डालते हैं और शक्तिहीन लोगों के पास इसके अतिरिक्त और कोई चारा नहीं कि वे कष्ट सहन करें। जीवन के मूल्य के संघर्षात्मक मापदण्ड और जीवन की विरोधात्मक योजनाएं जो कि राष्ट्रवादी और कम्युनिष्ट विचार-धाराओं में निहित हैं वे आतंकग्रस्त व्यक्तियों और समूहों के लिये उज्जवल भविष्य निर्माण करने में असंस्कृत एवं उलझे हुए प्रयत्न मात्र हैं। संसार में लाखों अशिक्षित तथा कष्ट-पीड़ित व्यक्ति एक घोर असन्तोष में पड़े हुए हैं जिस पर कोई नियन्त्रण नहीं। इनमें अपने अधि-

कारों की एक नवीन चेतना जागृत हो रही है और वे उन अधिकारों को अपने शोषकों के हाथों से छीनने के लिये पुकार कर रहे हैं। आज जो लोग यूरोप में तानाशाही को भौतिक एवं नैतिक साहाय्य दे रहे हैं उनका जन्म एवं विकास एक ऐसे संसार में हुआ था जहाँ पर संघर्ष, कष्ट और अव्यवस्था थे। जर्मनी के लोगों को तो राजनीतिक अपमान सहन करना पड़ा था। इसके साथ ही उन्हें अपने विनाश और पराजय का भी स्मरण था। तानाशाही राजनीतिक प्रणाली है जिसका जन्म निराशा से होता है।

लीग आफ़ नेशन्स की परीक्षा हुई और उसमें कमी पाई गई। यह संस्था आज ऐसे शक्तिशाली राष्ट्रों के हाथ में यंत्रवत् बन गई है जो किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं चाहते तथा जो परिवर्तन के इच्छुक राष्ट्रों का विरोध करते हैं। लीग आफ नेशन्स नाम के लिये अन्तर्राष्ट्रीय संस्था है पर उसका सञ्चालन राष्ट्रवादी लोगों के द्वारा होता है। ये लोग शान्ति, सुरक्षा और छोटे राष्ट्रों की एकता के बारे में बातें करते हैं और स्वार्थ सिद्धि का अवसर उपस्थित होने पर उन राष्ट्रों के प्रति सहानुभूति भी प्रदर्शित करते हैं। जो प्रभावशाली राष्ट्र हैं वे अपने उपनिवेशों को सुरक्षित रखना चाहते हैं तथा जो राष्ट्र युद्ध में विजय प्राप्त कर लेते हैं वे लूट के माल को हाथ से नहीं छोड़ना चाहते। यह सब शान्ति, प्रेम और अन्तर्राष्ट्रीयता के नाम पर होता है। जिनेवा में बैठे हुए बड़े-बड़े पण्डे प्राचीन काल के कुलपतियों के समान हैं। ये परिवर्त्तन का विरोध करते हैं तथा समाज में जो अन्याय हो रहा है उसका अन्धे बनकर समर्थन करते हैं। वे न्याय और स्वतंत्रता के आधार पर संसार की नवीन व्यवस्था नहीं चाहते। इतिहास का दूसरा नाम क्रान्ति है पर आजकल लीग

के कार्यों से उसका इतिहास-विरोध प्रकट करता है। परन्तु लीग न तो मानसिक प्रगति, शान्ति और विचार-धारा के विषय में कुछ सोचती है और न कभी इस बात का विचार करती है कि मानव-जीवन और समय की गति किधर है। समाज-व्यवस्था में परिवर्त्तन चाहने वाले शक्तिशाली तथा महत्त्वाकांक्षी राष्ट्र राजनीतिक क्षेत्र में पूर्ण स्वतन्त्रता पाने के लिये लीग को छोड़ देते हैं। उनका कहना है कि पहले न्याय चाहिये फिर शान्ति। लीग में वे ही राष्ट्र शामिल हैं जो या तो सन्तुष्ट हैं या कमज़ोर। उपनिवेशों पर अधिकार रखने का कारण आर्थिक तो है ही पर इसके साथ ही सम्मान की मनोवैज्ञानिक भावना भी कार्य कर रही है। उपनिवेश एक ओर अपने स्वामियों को लाभ पहुँचाते हैं और दूसरी ओर अन्य राष्ट्रों के हृदय में ईर्ष्या की भावना उत्पन्न करते हैं। जब एक ओर कुछ राष्ट्र अपने उपनिवेशों को अपने अधिकार में रखना चाहते हैं और उनकी रक्षा के लिये सब कुछ करने को तैयार रहते हैं और दूसरी ओर कुछ राष्ट्र उन उपनिवेशों को स्वयं छीनना चाहते हैं तभी युद्ध के कारण उपस्थित हो जाते हैं। अगर बड़े राष्ट्र स्वयं पहले त्याग करें जैसा कि बाद में दूसरे राष्ट्र भी करेंगे तो युद्ध बन्द हो जायँगे जो आज भयङ्कर सङ्कट के रूप में दिखाई पड़ते हैं। इंगलैण्ड जिसके राजनीतिक यथार्थवाद में आदर्शवाद भी सम्मिलित है इस विषय में नेतृत्व कर सकता है। इंगलैण्ड का उद्देश्य यह है कि उसके साम्राज्य में जितने देश हैं वे सब अपनी इच्छा से ब्रिटिश कोमनवैल्थ के समान और स्वतन्त्र हिस्सेदार बनें।

पर भारत की जो शोचनीय स्थिति है वह इङ्गलेन्ड की एक कमज़ोरी है। इसी कारण अन्य राष्ट्र भी इस विषय में इङ्गलेन्ड से ईर्ष्या करते हैं। जब तक भारत को स्वतन्त्रता नहीं

दी जाती तब तक इङ्गलेन्ड को इटली और जर्मनी की साम्राज्य-लिप्सा की आलोचना करने का कोई अधिकार नहीं। इङ्गलेन्ड को जापान से सुदूर पूर्व के विषय में और इटली से अफ्रीका के विषय में पूछने का कोई नैतिक अधिकार नहीं है। समस्याएँ पूरी तरह तब तक नहीं सुलझतीं जब तक उनका उचित हल नहीं निकाला जाता। अगर हम राजनीतिक आदान-प्रदान के पीछे कार्य करने वाले उचित-अनुचित के प्रश्नों पर विचार करें तो पता लगेगा कि संसार की अस्थिरता और अव्यवस्था का कारण नैतिक नियम का भंग करना है। यही समय है कि हमें स्थायी शान्ति प्राप्त करने के लिये समाज में सुव्यवस्था करनी चाहिये।

सभ्यता आत्मा का कार्य है, शरीर या मन का नहीं। मानसिक और भौतिक सफलताएँ ही काफी नहीं हैं। आध्यात्मिक और नैतिक उन्नति आवश्यक है। मनुष्य को एक क्रियाशील एवं उद्देश्यपूर्ण शक्ति होना चाहिये। मनुष्य को ऐसा सोचना छोड़ देना चाहिये कि प्रगति अपने आप होती रहेगी और उसे आदर्श तथा संयम की परवाह नहीं करनी चाहिये। मानव-जाति के इतिहास में व्याप्त प्रगति का मनुष्य एक उदासीन दर्शक या साक्षी नहीं है प्रत्युत वह एक क्रियाशील कर्ता है जो अपने आदर्शों के अनुकूल संसार का निर्माण कर रहा है। हमारी सभ्यता में एक बड़ी कमी यह है कि हम भौतिक पदार्थों की प्राप्ति में लगे हुए हैं और ऐसे आध्यात्मिक तत्वों की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं देते जो स्थायी तथा सार्वकालिक हैं। मनुष्य के जीवन का मूल्य भौतिक सेवा तक ही सीमित नहीं हो जाता। अगर स्थायी और सनातन तत्वों की उपेक्षा की जायगी तो सारा मानव-जीवन तुच्छ, निरुद्देश्य और असन्तोषजनक हो जायगा। हमारे पारस्परिक सम्बन्धों का आधार

समझदारी और मित्रता होना चाहिये और इस महत्वपूर्ण सिद्धान्त को स्मरण रखना चाहिये कि सनातन तत्व के बिना जीवन अर्थहीन हो जायगा। सभ्यता के विकास का लक्षण है—सच्चाई, ईमानदारी और स्वार्थहीनता में वृद्धि। समाज-सुधार के लिये व्यक्तियों के जीवन में परिवर्तन करना चाहिये। यद्यपि यह साधन कठिन और धीमा है पर सब से अधिक प्रभावपूर्ण है। अगर हम धैर्यपूर्वक प्रयत्न करें और उन चीजों को प्रथम स्थान दें जिन्हें देना चाहिये तो हम परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करके उन्हें अपने अनुकूल बना लेंगे। जो समाज नैतिक और आध्यात्मिक आदर्शों के लिये प्रयत्नशील है वही समाज सच्ची सभ्यता के लिये वैज्ञानिक आविष्कारों का उपयोग कर सकेगा।

सन् १६२६ में आक्सफोर्ड के मेनचेस्टर कालिज में प्रिन्सिपल जे० ऐस्टलिन कारपेन्टर का स्थान खाली होने पर मुझे उसके लिए निमन्त्रण दिया गया। तब मुझे अपने दार्शनिक विचारों को प्रकट करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। मैंने आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों को तुलनात्मक धर्म पर व्याख्यान दिये। इस यात्रा में मैंने लन्दन और मेनचेस्टर विश्वविद्यालय के बहुत से लोगों के सामने "जीवन का आदर्शवादी दृष्टिकोण" (An Idealist View of life) शीर्षक से हिबर्ट लैक्चर्स दिये। इन भाषणों में मैंने दर्शनशास्त्र की कुछ मूल समस्याओं पर अपने विचार प्रकट किये। बौद्धिक जगत में होने वाली क्रांति और धार्मिक तथा सामाजिक जीवन में आये हुए संकट का भी वर्णन किया। बाह्य कर्म-कण्ड से पूर्ण धर्म तथा पाखण्डपूर्ण मूर्तिपूजा का अब समय नहीं रहा। मनुष्य धर्म के क्षेत्र में सच्चाई की माँग कर रहे हैं। वे जीवन की गहराई में घुसना चाहते हैं। तथा उस परदे को दूर करना चाहते हैं जिसमें

आदि सत्य (Primordial reality) को छिपा लिया है। वे उस तत्व का भी ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं जो जीवन, सत्य और सदाचार के लिये आवश्यक है। संकीर्ण तथा जड़ धर्म के स्थान पर अनेक चीजें पैदा हो गईं पर उनमें आत्म-ज्ञान को ग्रहण करने की शक्ति नहीं होती। व्यावहारिक ज्ञान धर्म का स्थान नहीं ले सकता।

मुझे तो ऐसा लगता है कि वर्तमान सभ्यता में आत्मा का अभाव है। राजनीति और अर्थशास्त्र, नीति-शास्त्र और धर्म से प्रेरणा नहीं प्राप्त करते। अगर खोई हुई आत्मा को फिर से प्राप्त करना है तो एक नवीन शक्तिशाली धर्म की आवश्यकता होगी जिसमें बुद्धि का बहिष्कार नहीं होगा और जिसका पालन स्वतन्त्र विचारों की आत्माएं भी कर सकेंगी।

धर्म न कोई मत है न कानून की पुस्तक। वह सत्य का अन्तर्ज्ञान है। अगर हम इसको बुद्धिवाद समझने की भूल करते हैं तो कहना होगा कि हम हथियारों से लदे हुए उन प्राचीन समाजों को उचित समझते हैं जो ईश्वर के विभिन्न रूपों की रक्षा के लिये आपस में लड़ा करते थे। सब धर्मों को जन्म देने वाले साधु और महात्मा वास्तव में महान् थे जिनको इन्द्रियातीत सत्य का ज्ञान था।

आध्यात्मिक सत्य आध्यात्मिक ज्ञान से ही प्राप्त होता है जो कि मानसिक एवं ऐन्द्रिक दोनों है। यह ज्ञान तर्क द्वारा नहीं प्राप्त होता। वह तर्क से परे है। उसका नाम अन्तर्ज्ञान या प्रज्ञा है। हेगेल तथा हेतुवादी दार्शनिक (Rationalists) आलोचनात्मक बुद्धि (Reason) को सब से अधिक महत्व देते हैं। यह बिल्कुल ठीक नहीं कहा जा सकता। वर्तमान युग और उसके कार्य करने के साधन वैज्ञानिक हेतुवाद (Scientific Rationalism) का समर्थन करते हैं। हमारा सारा

ध्यान और उत्साह भौतिक पदार्थों को जुटाने और प्रयोग करने में लगा हुआ है तथा उन वस्तुओं के प्राप्त करने में लगा हुआ है जो हमारे निकट हैं। व्यावहारिक अनुभव और कला विशेष की ओर अत्यधिक ध्यान देना सभ्यता के इतिहास में अद्वितीय है। इससे मानव जाति का बड़ा लाभ हुआ है। यह निस्सन्देह सत्य है। लेकिन जो लोग वर्णनात्मक विज्ञान (Descriptive Sciences) और उसके साधनों को उपयोग में लाते हैं उन्हें भी वैज्ञानिक ज्ञान और उसके मूल्य की सीमा के सम्बन्ध में प्रश्न करने पड़ते हैं। प्रकृति पर अधिकार करने में वैज्ञानिक सिद्धान्तों से लाभ पहुँचता है परन्तु उनसे सत्य का ज्ञान नहीं प्राप्त होता। एलेक्टोन और प्रोटोन से सत्य के रहस्य का पता नहीं लगता। इसके अतिरिक्त आत्मा और परमात्मा को गणित के समीकरण के रूप में भी नहीं प्रकट किया जा सकता। हमारे गम्भीर विश्वास जिनके लिये हम कभी-कभी प्राण तक दे देते हैं बौद्धिक-गणना के परिणाम नहीं हैं। व्यक्तिगत जीवन के निर्णयात्मक अनुभव सूत्र रूप में नहीं जाने जा सकते। वैज्ञानिक हेतुवाद तक इस प्रकार की अनुभूतियों की यथार्थता तथा वैज्ञानिक ज्ञान की अपूर्णता को स्वीकार करता है। इस प्रकार का ज्ञान यह बतलाता है कि हमारे मस्तिष्क का निर्माण ऐसा नहीं हुआ है कि अन्तर्ज्ञान द्वारा यथार्थ का अनुभव ही न कर सकें।

हिन्दू-दर्शन निरन्तर यह कहता रहा है कि यद्यपि मनुष्य सत्य तक पहुँच सकता है परन्तु उसका ज्ञान विश्लेषणात्मक बुद्धि से नहीं हो सकता। प्लैटो, प्लौटिनस, सेन्ट पाल, सेन्ट आगस्टिन, लूथर और पैस्कल आदि अनेक विचारकों ने हिन्दू-दार्शनिकों के इस विचार का समर्थन किया है। वर्तमान वैज्ञानिकों का यह कथन कि संसार में निरन्तर अद्भुत घट-

नाएँ होती रहती हैं अन्तर्ज्ञान की आवश्यकता प्रकट करता है। जीवन ज्यामिति का साधारण चित्र नहीं है। जीवन का सार रचनात्मकता है। वह नवीन रचना है कार्य और कारण का जड़ सम्बन्ध नहीं। इस बाह्य जगत के पीछे जो शक्ति है वह उस महान गुप्त भण्डार में से कोई नवीन वस्तु रचने के लिये प्रेरणा करती है। हम कभी उस रचनात्मक शक्ति के स्रोत का विश्लेषण नहीं कर सकते। यदि वास्तविकता एक यथार्थ है तो अन्तर्ज्ञान ही सबसे बड़ा ज्ञान है। इस ज्ञान में बुद्धिवाद को भी स्थान है। चाहे हम इसमें कार्य-कारण के सिद्धान्त को अपनी सीमित दृष्टि के कारण न समझ पावें पर वास्तविक शृङ्खला में कहीं सम्बन्ध-विच्छेद नहीं मिलता। जगत एक रचनात्मक क्रिया है जो निरन्तर होती रहती है। साथ ही यह हेतुपूर्ण क्रिया है। बुद्धि जगत् की इस क्रिया को समझ लेती है पर इसके रहस्य को केवल अन्तर्ज्ञान द्वारा ही जाना जा सकता है।

अन्तर्ज्ञान बौद्धिक ज्ञान का विरोधी नहीं है जैसा कि बर्गसाँ हमें कभी-कभी समझाने की चेष्टा करता है। यह ज्ञान न तो ऐन्द्रिक स्फुरण है और न भावनात्मक उपभोग। इसमें बुद्धि भी एक महत्वपूर्ण कार्य करती है। यदि अन्तर्ज्ञान को बुद्धि का समर्थन नहीं प्राप्त होगा तो वह एक सुधार विरोधी और अपने में ही सन्तुष्ट रहने वाला सिद्धान्त बन जायगा। अन्तर्ज्ञान सभी प्रकार के अनुभवों की एकता तथा अविच्छिन्नता स्वीकार करता है। उस आदि कारण की बौद्धिक खोज हमें ईश्वर के विचार तक पहुँचा सकती है। अन्तर्ज्ञान हमें बतलाता है कि यह विचार कोरा विचार ही नहीं वास्तविकता है। महान आत्माएँ हमें संसार के सत्य का ज्ञान कराती हैं। सत्य का यह ज्ञान हमेशा अपूर्ण ही रहता है। इसी कारण बौद्धिक

मत-मतान्तर अपूर्ण होते हैं और कभी-कभी एक दूसरे के विरोधी जान पड़ते हैं।

मनुष्य का यही अन्त है कि उसके शरीर के प्रत्येक अङ्ग में आत्मा का प्रवेश हो जाय। जब मनुष्य का क्षुद्र स्वार्थ मिट जाता है तभी वह अपने व्यापक स्वरूप को प्राप्त करता है। मनुष्य केवल सहजात प्रवृत्तियों (instincts) और कामनाओं (desires) का योग ही नहीं है। वह एक अविभाज्य चेतन रचना है। जब इसमें कुछ कमी आती है तो असन्तोष और बेचैनी होती है। हमारी वर्त्तमान अवस्था और भावी अभिलाषा इन दोनों के बीच हमेशा खिंचाव रहता है। प्रकृति मानव जीवन का निर्माण करती है और आत्मा उसको महान बनाती है। जीव एक अल्पकालीन अस्थायी रचना है जो इन दोनों के बीच हिलता रहता है।

जिन लोगों के जीवन में पूर्णता हो वही मुक्त हैं। वे एक ऐसे सुख का आनन्द लेते हैं जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता और ऐसी शान्ति का भोग करते हैं जिसको बुद्धि समझ नहीं सकती। जिस प्रकार प्रातःकालीन सूर्य के सामने बिजली के बल्व का प्रकाश कोई महत्त्व नहीं रखता उसी प्रकार आध्यात्मिक आनन्द के सामने भौतिक वैभव फीका पड़ जाता है।

नये समाज का निर्माण उन लोगों के द्वारा होगा जिन्होंने अपने व्यक्तित्व का विस्तार कर लिया है तथा जीवन को पूर्ण बना लिया है। जिन लोगों ने आन्तरिक शक्ति और पूर्णता प्राप्त कर ली है उनके लिये समाज की अपूर्ण व्यवस्था एक चुनौती है। वे अपनी त्याग की भावना से संसार में प्रेम, सदाचार और राम-राज्य स्थापित करेंगे। जब तक समाज में पूर्णता नहीं आ जाती तब तक कोई भी व्यक्ति वास्तव में मुक्त नहीं

कहा जा सकता। अगर विकास-क्रम एक प्रकार का भार है जिससे आत्मा मुक्ति चाहती है तो यह मुक्ति तभी मिल सकेगी जब विकास अपनी चरमसीमा पर पहुँच जायगा। शक्तिशाली लोग कमज़ोरों की तब तक सहायता करेंगे जब तक उन्हें भी मुक्ति नहीं मिल जाती। विकास-क्रम का उद्देश्य सब की मुक्ति है और जब यह मुक्ति मिल जायगी तब यह क्रम भी समाप्त हो जायगा। भौतिकता आध्यात्मिकता में परिवर्तित हो जायगी।

विकास-क्रम उस अनन्त शक्ति की एक विशेष सम्भावना है। इस क्रम में वह शक्ति ऐसे दिव्य सिद्धान्त के रूप में सामने आती है जो संसार की प्रत्येक वस्तु को अपने नियन्त्रण में किये हुए है। ईश्वर असीमित शक्ति का ऐसा महान शान्त सागर नहीं है जिसमें व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को खो देता है। वह तो एक ऐसा दिव्य पुरुष है जो प्रारम्भ और अन्त में निरन्तर संसार-चक्र को प्रेरणा देता रहता है। उसने संसार की रचना की है। ऐसा कहना उसके महत्व को कम करना है। वह तो इस समय भी रचना कर रहा है और हमेशा करता रहता है। इस दृष्टि से इतिहास उस दिव्य सङ्कल्प (Divine Will) का महाकाव्य है, ईश्वरीय ज्ञान है। वह दिव्य-शक्ति अपने को भौतिक साधनों द्वारा ही प्रकाशित करती है। हिन्दू-धर्म में उस दिव्य-शक्ति को कवि या सृष्टा कहते हैं। पुरुष के रूप में ईश्वर इस संसार के कार्यों में बड़ी रुचि लेता है। मानव-जाति के लिये वह मित्र, न्यायकर्ता और मुक्तिदाता है। ईश्वर ऐसी पूर्ण शक्ति है जो काल और परिवर्तन से परे है। वह केवल ऐसा साधन ही नहीं है जिसके द्वारा अनन्तशक्ति अपने को प्रकट करती तथा हमारे द्वारा जानी जाती है, अपितु वह ऐसा मार्ग है जिस पर चल कर संसार का कार्य होता है। वह

सार्वभौम शक्ति असीमित सम्भावनाओं का योग एवं स्रोत है। उन सम्भावनाओं में से एक सम्भावना जगत के रूप में दिखाई पड़ती है। जहाँ तक इस सम्भावना का सम्बन्ध है वह पूर्ण हो रही है और वह सार्वभौम शक्ति जिसे पहले से ही सामान्य योजना का ज्ञान है, ईश्वर का रूप धारण करके संसार को चला रही है। ईश्वर हमारे मन की कोरी कल्पना ही नहीं है। वह उस सार्वभौम शक्ति का एक सच्चा प्रतीक है तथा एक ऐसा अङ्ग है जिसका संबंध ऐसी विशेष सम्भावना के साथ है जो कार्य रूप में परिणत हो रही है। वह सार्वभौम शक्ति का विकृत प्रतिविम्ब नहीं है। दार्शनिक लाईब्निटस के शब्दों में वह ऐसी अद्भुत घटना है जिसका आधार यथार्थ है। जब ईश्वर और जगत के बीच पूर्ण सानुरूपता स्थापित हो जायगी, जब ईश्वर का कार्य पूरा हो जायगा, जब सब जीव पूर्णता प्राप्त कर लेंगे तो ईश्वर स्वयं अपने को अखण्ड रूप में पलट लेगा। प्रकृति के त्रयोगुणों में साम्यावस्था स्थापित होकर सृष्टि भारमुक्त हो जायगी और ईश्वर की 'एकोऽहम् बहुस्याम' की भावना भी लुप्त हो जायगी। अखण्ड ईश्वर की सत्ता सृष्टि के समाप्त होने पर मिट नहीं जाती।

अपने हिबर्ट व्याख्यानों में मैंने यही विचार प्रकट किये और उन लोगों ने मेरा जो स्वागत किया उसके लिये मैं उनका कृतज्ञ हूँ। यूरोप और अमेरिका के प्रसिद्ध दार्शनिकों ने—जिनमें सैम्युअल ऐलेग्जेन्डर, बरट्रन्ड रसैल, जे० एच० म्यूरहैड, जे० एम० मेकेन्जी, डब्लू० आर० इन्ग, एल० पी० जैक्स, रवीन्द्रनाथ टैगोर और हर्बर्ट सेम्युअल सम्मिलित हैं— उदारतापूर्ण शब्दों में उसका स्वागत किया।

आक्सफोर्ड में मैंने जो व्याख्यान और उपदेश दिये थे उनमें से कुछ "पूरब और पश्चिम का धर्म" (East and

West in Religion) शीर्षक छोटी सी पुस्तक में संग्रहीत हैं। इन व्याख्यानों का सार यही था कि न्याय करना, दूसरों पर दया करना और प्राणियों को सुखी बनाना धर्म है। महात्मा कोई रंगीन शीशे की आकृति नहीं होता। वह निरन्तर परिश्रम करता है और समाज में प्रेम और दया का व्यवहार स्थापित करने के लिये प्रयत्न करता है। किसी व्यक्ति की आवश्यकता ही उसकी उदारता के लिये काफी है। आत्मा की एकता के साथ ही शरीर की एकता में भी हमें विश्वास होना चाहिये। यह ठीक है कि हम किसी टेलीफोन डाइरेक्टरी से प्रेम नहीं कर सकते। मानव-प्रेम का प्रदर्शन तो उन स्त्रियों और पुरुषों के साथ ही हो सकता है जिनके हम सम्पर्क में आते हैं।

आक्सफोर्ड, बरमिंघम, मेनचेस्टर और लिवरपूल में इसाइयों के प्लेटफार्म से व्याख्यान देने का बड़ा अनुभव हुआ। मुझे यह जान कर सन्तोष हुआ कि ईसाइयों ने मेरे व्याख्यानों को पसन्द किया। आक्सफोर्ड के एक दैनिक पत्र ने मेरे व्याख्यान "क्रान्तिका साधन—तपस्या" (Revolution through Sufferong) का जिक्र करते हुये लिखा "यद्यपि भारतीय प्रचारक में कल्पना-शक्ति और भाषा के साथ ही विचारों का चमत्कार पूर्ण जाला बुनने की आश्चर्य जनकशक्ति है पर उसका बड़प्पन उस अवर्णनीय आध्यात्मिक गुण में है जो हमारा ध्यान आकर्षित करता, हृदय को प्रभावित करता तथा जीवन को उच्च बना देता है।"

: ४ :

जीवन की समस्याएँ

जिन लोगों का जीवन सुखी है उन्हें ऐसा नहीं समझ लेना चाहिये कि सब का ही जीवन ऐसा होगा। अगर किसी का जीवन सुरक्षित हो और उसे कष्टों का सामना न करना पड़ता हो जबकि उसके आस-पास सैकड़ों ऐसे लोग हों जिनका जीवन दयनीय हो और जो भयंकर कठिनाइयों के बीच रहते हों तो उस भाग्यशाली व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह हमेशा अभागे लोगोंका ध्यान रक्खे। अध्यापक होने के कारण मैं कच्ची उम्र के युवक और युवतियों के सम्पर्क में आया। दर्शन-शास्त्र जिसका विषय मुख्यतः उपयोगितावाद (Utilitarianism) नहीं है, पक्षपात-हीन शिक्षा देने का एक बड़ा साधन है। उसका उद्देश्य मनुष्य को सांसारिकता से ऊपर उठाना है, परिस्थितियों पर विजय प्राप्त कराना है, उसकी आत्मा को भौतिक पदार्थों की दासता से छुड़ाना है। दर्शन-शास्त्र उन लोगों के विचारों को उच्च बनाता है जो उसकी शिक्षाओं से लाभ उठाने की क्षमता रखते हैं और उन वस्तुओं के प्रति प्रेम उत्पन्न करता है जिन्हें संसार

न तो ले सकता है और न दे सकता है। अगर हम दर्शन-शास्त्र का अच्छी तरह अनुसरण करें तो वह असफलता, दुःख, कष्ट और निराशा के विरुद्ध हमारी रक्षा करेगा। अगर सफलता का भाव धन-संग्रह से है तो दर्शन-शास्त्र ऐसी सफलता नहीं दिला सकता। वह ऐसे बहुमूल्य आदर्शों से हमारा प्रेम कराता है जिनकी ओर साधारण लोग कभी ध्यान नहीं देते। दर्शन-शास्त्र का उद्देश्य मनुष्य का निर्माण करना है।

जितने समय मैं विद्यार्थियों के साथ रहता था मैं हृदय से यही प्रयत्न करता था कि वे आध्यात्मिक तथा नैतिक संसार में विश्वास करना सीख जायें। अगर अध्यात्म-विद्या, दान, मानसिक प्रकृति और प्रेम के प्रधान सत्य हमारे मन और हृदय में बैठ जायें तो उन अधार्मिक प्रवृत्तियों का हम पर कोई असर नहीं पड़ेगा जो हमें बाद के जीवन में घेर लेती हैं। कुछ समय मौन रखना, हृदय और आत्मा को पवित्र बनाना और आत्मा से बातें करना—इन चीजों के प्रति विद्यार्थी के हृदय में अनुराग उत्पन्न करना अत्यावश्यक है। ऐसा करने से वे अपने विचारों का स्मरण कर सकेंगे, अपने स्वरूप को पहचान सकेंगे तथा अपने व्यक्तित्व का निर्माण कर सकेंगे। उस शान्तावस्था में हम आत्मा की तीखी आवाज़ सुनेंगे जबकि बन्दी कारागार से मुक्त होने के लिये करुण पुकार करता है—पथिक अपने घर जाना चाहता है, ससीम असीम से मिलने के लिये बेचैन रहता है। एकान्तावस्था में जो कुछ भी हम अपने साथ करते हैं उसी का नाम धर्म है। प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर एक ऐसा पवित्र-स्थल होता है जहाँ पर किसी को प्रवेश करने का अधिकार नहीं। हमारा कर्त्तव्य है कि समय-समय पर उस स्थान को जाकर अपने यथार्थ स्वरूप का पता लगावें और देखें कि बाहरी दुनियां में हम

अपने जिस रूप को प्रदर्शित करते हैं उससे यह रूप कितना भिन्न है। हममें से अधिकांश लोग अपने को धोखे में रखते हैं। निरन्तर आत्म-निरीक्षण द्वारा ही हम अपनी रक्षा कर सकते हैं। मौन होकर आत्म चिंतन करना, यह भगवान् की प्रत्येक प्रकार की आराधना का एक आवश्यक अंग है। शास्त्र में एक स्थान पर बड़ी सुन्दर चर्चा है। महात्मा ने देवदूतों को भगवान की आराधना करते हुए देखा। यकायक "आध घण्टे के लिये स्वर्ग में शान्ति रही।" गीतों की ध्वनि बन्द होगई। अप्सराओं ने गाना बन्द कर दिया। जब देवदूत मौन थे और उस मौनावस्था में आत्मा की आवाज सुनने को उत्सुक थे तब की शान्ति कोई जड़ शान्ति नहीं थी। वह जीवन से ओत-प्रोत थी। ऐसी ही निस्तब्धता में हमें अपने यथार्थ स्वरूप का बोध होता है और इस बात का ज्ञान होता है कि हम किस प्रकार अपने जीवन को अधिक से अधिक उस दिव्य-शक्ति के योग्य बना सकते हैं।

व्रत और प्रार्थना आराधना नहीं है। उसके लिये पवित्र और आकुल हृदय आवश्यक है। कस्तूरी मृग के अन्दर होती है पर वह समझता है कि सुगन्धि कहीं बाहर से आ रही है। इसलिये वह उसकी खोज में पागल बन जाता है। ईश्वर हमारे हृदय में निवास करता है। हमको केवल अन्तर्मुख होकर इस सत्य का अनुभव करना है। संस्कृत में एक श्लोक आता है जिसका आशय यह है कि परमात्मा की आराधना के लिये पुष्पों की खोज में मूर्ख झील में डुबकी लगाता है, जंगलों में मारा-मारा फिरता है, पहाड़ की चोटियों पर चढ़ता है, पर वह इस बात का विचार नहीं करता कि उसके पास ही भेंट चढ़ाने के लिये एक कमल का पुष्प है। यह पुष्प उसका मन है। मनुष्य को चाहिये कि वह अपने को एक जीता-जागता

यज्ञ बनावे। हम कोई भी दूषित, अपवित्र, विकृत और अपूर्ण वस्तु भगवान को अर्पण नहीं कर सकते। "भगवान का मंदिर पवित्र है और तुम ही वह मन्दिर हो।" हमारे चारों ओर जो अव्यवस्था और गड़बड़ी है उसमें से हमें एक ऐसे चरित्र का निर्माण करना है जो बड़ी-बड़ी कठिनाइयों में भी उज्जवल रहे। अगर ऐसा नहीं किया जायगा तो जीवन ऐसी निरर्थक और ऊटपटाँग घटनाओं का एक संग्रह हो जायगा जिनका कोई विशेष उद्देश्य नहीं है। ऐसे जीवन से कोई लाभ नहीं। जो चीज जीवन को महत्वपूर्ण बनाती है वह है एक उद्देश्य जिसके लिये सावधानी के साथ प्रगति में बाधा डालने वाली रुकावटों को दूर करते हुए चलना होता है। शान्ति की इन घड़ियों में हम अपने को दैनिक जीवन की झंझटों और छल-कपट से मुक्त करना चाहते हैं तथा विचारों को पवित्र करके मन और हृदय को शुद्ध करना चाहते हैं। योग, जिसका उद्देश्य आंतरिक जीवन और बाह्य-जीवन में पूर्ण सामंजस्य स्थापित करना है, मौन, ध्यान और आत्म-निरीक्षण इन तीन साधनों को प्रयोग में लाता है।

मुझे यह जानकर प्रसन्नता होती है कि मेरा परिश्रम बिलकुल व्यर्थ नहीं गया है। कम से कम कुछ स्त्री और पुरुष अनुभव करने लगे हैं कि यह मौलिक सत्य हमारे जीवन में धारण करने योग्य है। वही मनुष्यता जो मानसिक शान्ति और प्रेम में प्रकट होती है जीवन को जीने योग्य बनाती है। वह मनुष्यता शारीरिक स्वास्थ्य और धन-सम्पत्ति से अधिक मूल्यवान है। सचमुच बड़े लोग वे नहीं हैं जिनके पास अधिक धन है या जो अधिक बुद्धिमान हैं या जिनकी समाज में अधिक प्रतिष्ठा है। ईश्वर लोगों को इसलिये छोटा नहीं समझता क्योंकि वे गरीब और बुद्धि-हीन हैं। महत्वपूर्ण बात

सो यह जानता है कि कहाँ तक हमने दूसरों के साथ उदारता का व्यवहार किया है तथा हम स्वयं अपने साथ तथा अन्य लोगों के साथ कहाँ तक ईमानदार और सच्चे रहे हैं। जो लोग शरीर से स्वस्थ तथा भौतिक-वैभव से सम्पन्न हैं वे चिन्ताओं और कष्टों के विरुद्ध संघर्ष करते हुए दिखलाई पड़ते हैं। अपने ड्राइङ्ग-रूम में चाहे उनके चेहरे पर कितनी ही मुस्कराहट क्यों न दिखाई पड़े पर सच बात यह है कि उनके हृदय वेदना से पीड़ित हैं। शक्ति और धन द्वारा अपने से अपनी वास्तविक अवस्था को छिपा लेते हैं और बाहरी सफलताओं पर चित्त को लगाकर कुछ भौतिक प्रवृत्तियों को तृप्त कर लेते हैं। परन्तु जब वे गम्भीरता से विचार करते हैं तो उन्हें पता लगता है कि किसी अत्यावश्यक वस्तु का उनके अन्दर अभाव है। वे इस बात के लिये संसार को दोष देते हैं कि कोई व्यक्ति उनसे प्रेम नहीं करता, उनके बच्चे ही उनसे अलग हो जाते हैं, उनके जीवन में स्थायी सुख नहीं होता और जैसे ही उनकी उम्र बढ़ती जाती है वैसे ही वे अधिक दुःखी होते जाते हैं। शीघ्र ही उन्हें अपना जीवन निरर्थक जान पड़ता है। उनकी आँखों में गम्भीर खिन्नता और विषाद को सूचित करने वाला एक प्रकार का ऐसा मूक और आश्चर्य से पूर्ण भय दिखाई पड़ता है जो कभी-कभी पशुओं की आँखों में दिखाई पड़ता है। सुन्दर हाव-भाव और तेज आवाज के साथ ही उनकी आँखों में कष्ट का भाव दृष्टिगोचर होता है। ऐसा जान पड़ता है मानों यह संसार उनके रहने का स्थान न हो, मानों वे बड़ी दूर से आये हों और अब लौटने में असमर्थ हों। एक प्रकार का दुःख उन्हें घेरे रहता है और ऐसा जान पड़ता है कि वे बिलकुल उदासीन हैं। उनके अन्दर केवल एक हलकी सी इच्छा शान्ति और मृत्यु की है। जो

लोग हृदय की बात पढ़ सकते हैं वे जानते हैं कि उनका क्षुद्र उन्माद, आमोद-प्रमोद और हास्य सब कुछ एक परदा है। उनका चित्त उद्विग्न है। इससे प्रकट होता है कि उनका मन सन्तुलित नहीं है। वे इसलिये कष्ट उठाते हैं क्योंकि वे असंगत और अर्थ-हीन बातों से बचना चाहते हैं। हमारे अन्दर जितनी जागृति होती है उतनी ही निर्जनता और शून्यता बढ़ती है। मनुष्य को अपने अपराध का ज्ञान होता है और वह सोचता है कि उसे मोक्ष की इच्छा के साथ ही अधिक अच्छे कर्म भी करने चाहिये। समय का उचित हल ढूँढते समय या ऐसे सच्चे मित्र की खोज करते समय जो माँ-बाप के समान आत्मा का पथ-प्रदर्शन कर सके, मनुष्य को दुःख और उदासीनता घेर लेती है। उन लोगों का जीवन धन्य है जो दुःखी होते हैं, कष्ट उठाते और रोते हैं। जिस हृदय में वेदना होती है वहाँ प्रेम करता है। हृदय जितना ही कोमल होता है उसे उतना ही कष्ट उठाना पड़ता है। जिन लोगों का हृदय विशाल होता है उनका दुःख अत्यधिक होता है। जीवन की सबसे बड़ी चीज खोकर, हृदय को कठोर बनाकर ही हम कष्ट से मुक्ति पा सकते हैं। एक महात्मा था जिसके सिर पर सोने का मुकुट था। उसकी कहानी विशेष महत्व रखती है। जब वह स्वर्ग में पहुँचा तो उसने देखा कि सब महात्माओं के सिर पर रत्न-जटित मुकुट थे पर स्वयं उसे सोने का ही मुकुट दिया गया था। उसने पूछा, "मेरे मुकुट में रत्न क्यों नहीं हैं?" देवदूत ने उत्तर दिया "क्योंकि तुमने कोई रत्न नहीं दिया था। ये रत्न वे आँसू हैं जो उन महात्माओं ने पृथ्वी पर बहाये थे। तुमने कोई आँसू नहीं बहाया"। महात्मा ने कहा, "मैं परमात्मा के प्रेम में मस्त था। मैं किस प्रकार आँसू बहा सकता था।" देवदूत ने कहा इतना काफी है। तुम्हारा मुकुट

सोने का है। लेकिन रत्न उन लोगों के लिये हैं जिन्होंने आँसू बहाये थे।" कष्ट-सहन करके ही हमें ज्ञान होता है। सच्चे मानवजीवन की शर्त कष्ट और एकाकीपन को सहन करना है। कष्ट से वे ही लोग बच सकते हैं जो संसार की बाहरी बातों में फँसे रहते हैं और आन्तरिक जीवन की ओर बिलकुल ध्यान नहीं देते। प्रायः कष्ट सहन करना दण्ड भोगना नहीं है। वह तो अनुशासन के रूप में होता है। जब बड़ी चोट लगती है, जब हमारे जीवन में अन्धकार छा जाता है, जब हमारे हृदय को धक्का लगता है, जब कुछ काल के लिये हम किंकर्तव्य-विमूढ़ और पराजित हो जाते हैं, जब जीवन में अपनी रक्षा करने वाला कोई नहीं दिखाई पड़ता, जब हम पुकार उठते हैं "अरे ईश्वर! क्या तू मर गया है?" जब हम अधिक जोर से पुकारते हैं "मेरे ईश्वर! तूने मुझको क्यों भुला दिया है?" जब हम निराशा से भरी हुई इस प्रकार का भी कोई उत्तर नहीं पाते, जब हमारे सामने घोर निस्तब्धता छा जाती है, जब हमारे जीवन की जड़ें हिल जाती हैं और संसार गिरने लगता है, तब हमें सब कुछ सहन करना पड़ता है। आँधी का सामना करना पड़ता है और ईश्वर के प्रेम में श्रद्धा और विश्वास करना पड़ता है। इन सब बातों का अर्थ होता है कष्ट-सहन, और कष्ट-सहन करके ही हम उन्नति करते हैं और हमारा ज्ञान बढ़ता है। कष्ट-सहन द्वारा हम आत्मा की प्रकृति पर विजय प्रदर्शित करते हैं। इस प्रकार कष्ट-सहन उन्नति के लिये एक साधन बन जाता है। जब एक बार लंगर डाल दिया जाता है और जीवन में अनुशासन आ जाता है और प्रत्येक कार्य आत्मा की आज्ञा से होने लगता है तब कष्ट आनन्द के रूप में बदल जाते हैं। कष्टों के भय के स्थान पर कष्ट-सहन करने के लिये साहस पैदा होता है। कष्ट उठाकर

ही आनन्द मिल सकता है। इन कष्टों को मनुष्य स्वयं अपने आप स्वीकार करता है।

हमारा जीवन अन्य लोगों के साथ अनेक बातों में बँधा हुआ है। जब हम दूसरों से वार्तालाप करते हैं तो उनसे स्वास्थ्य, शक्ति, सुख और उत्साह प्राप्त करते हैं। कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनकी ओर हम सहायता और सहानुभूति के लिये देखते हैं। ऐसे लोग कभी हमें निराश नहीं करते। ऐसे लोग जो अन्धकार में प्रकाश फैलाते हैं वे इस संसार के भले लोग होते हैं। हमें उनके प्रेम और मित्रता में कोई सन्देह नहीं होता। हम नहीं जानते कि हमारे ऊपर उनका कितना ऋण है। उनके प्रेम, सहानुभूति और उपकार को कभी चुकाया नहीं जा सकता। वे किसी प्रकार के फल या पारितोषिक की आशा नहीं करते। जहाँ पर सच्चा प्रेम होता है वहाँ पर मनुष्य प्रदान करना चाहता है विक्रय नहीं—पवित्र उपहार चाहता है, उपार्जन नहीं चाहता। अध्यात्म-विद्या की भाषा में कहें तो इस प्रकार कहना होगा कि प्रेम, न्याय से बड़ा है जो कि अन्धा देवता है। अगर प्रेमी को उसमें जरा भी गुण दिखाई पड़ता है तो वह उसके लिये अपना सर्वस्व देने को तैयार हो जाता है। उसे इस बात की परवाह नहीं कि लोग उसको गलत समझते हैं। वह निन्दा, उपहास और दण्ड सब कुछ सहने को तैयार रहता है। उसके लिये कोई भी त्याग बड़ा नहीं। जब आत्मा में जड़ता आ जाती है और संसार मरुस्थल जान पड़ता है, जब हमारा हृदय नीरस हो जाता है और बुद्धि काम नहीं देती तब प्रेम और मैत्री ही हमारे अन्दर आशा और विश्वास का संचार करते हैं। विश्लेषण और आलोचना से हमारा कोई काम नहीं निकलता। ये ही गुण मनुष्य के जीवन में नवीनता लाते हैं। इनका मूल्य धन, यश और सभ्यता से अधिक है।

संसार में जो लोग शक्ति-सम्पन्न हैं वे भी जनता को इतना लाभ नहीं पहुँचा सकते जितना गरीब लोग पहुँचा सकते हैं। वे शक्ति या धन पर निर्भर नहीं रहते। उनके लिये न हाथों की ज़रूरत है और न पैरों की। वे अपनी आँखों से प्रकाश पहुँचाते हैं तथा वाणी और मुस्कराहट से लोगों में उत्साह भर देते हैं। दयावान व्यक्ति के हाथ का स्पर्श बिजली की चिनगारी के समान अंधकार में प्रकाश कर देता है। प्रतिभाशाली लोगों के थोड़े से हाव-भाव और वार्तालाप का बड़ा प्रभाव पड़ता है। मानवता और आदर्श का खजाना जो मानव-हृदय में बन्द पड़ा है तथा जो कभी खोला नहीं जाता, या बहुत कम खोला जाता है, यह अब खूब खुल जाता है।

इस प्रकार का मानव जीवन मुझे विद्याभिमानी पण्डित और नीरस विचारों का विश्लेषण करने वाले दार्शनिक के जीवन से अच्छा लगा। कमज़ोर और असहाय लोगों की सहायता करने की प्रवृत्ति परिष्कृत स्वभाव के लोगों की एक विशेषता है। कोई मनुष्य दूसरे के हृदय की बात नहीं जानता जिसको वह स्वयं नहीं जानता उसके विषय में कैसे निर्णय दे। सकता है? हम दूसरे लोगों को उनके शब्दों और कार्यों से ही जानते हैं। हम उनके विचारों को नहीं जान सकते। उनके हृदय में कौनसी मूक भावनाएं काम कर रही हैं! हम नहीं जानते। उनकी आत्मा के गुप्त भाग तक हमारी पहुँच नहीं है। जब तक मनुष्य दूसरे के अनुभव को स्वयं अनुभव न करे तब तक वह उस अनुभव को नहीं जान सकता। फिर किस व्यक्ति का जीवन इतना पवित्र और चरित्र इतना निष्कलङ्क है कि वह दूसरों के विषय में निर्णय दे सके? अगर आध्यात्मिक दृष्टि से विचार किया जाय तो हममें से कोई भी ऐसा नहीं निकलेगा जो दण्ड से बच सके। जब कोई शक्तिशाली

पाशविक प्रवृत्ति हमको अविवेकी बना देती है तब हममें से अधिकांश लोग बड़ी ही विचित्र स्थिति में पड़ जाते हैं। हम जंगली चिड़िया के समान व्यर्थ ही अपने पंखों से पिंजड़े के सींखचों से लड़ रहे हैं। निर्णय सब से अधिक घृणास्पद है। महात्मा ईसा के सामने जब वह स्त्री लाई गई जिसके विरुद्ध व्यभिचार का दोष लगाया गया था तब उन्होंने उस स्त्री की ओर से अपना मुख नहीं मोड़ा वरन् उन लोगों की ओर पीठ फेरली जो उस स्त्री की निन्दा करते थे। जब ईसा ने उस स्त्री के प्रति अविवेकी, अपवित्र और अशिष्ट व्यवहार देखा तो उन्हें बड़ा दुख हुआ। उस क्षुद्रता और कपट-पूर्ण आलोचना के बीच केवल प्रेम ही ऐसा था जोकि सत्य था। जो लोग सच्चे होते हैं वे कभी न किसी से घृणा करते हैं और न किसी को छोटा समझते हैं। अगर कोई गम्भीरतापूर्वक अपने हृदय का निरीक्षण करे तो उसको उसमें अन्य लोगों के समान ही गुण-दोष मिलेंगे। अधिकांश लोग पाशविक प्रवृत्ति के प्रभाव में आकर अपराधी और सद् प्रेरणा होने पर साधु बन जाते हैं। अज्ञान और परिस्थितियों ने हमारे रूप को विचित्र बना दिया है। यद्यपि जितने प्रकार के प्राणियों को हम जानते हैं उनमें मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो आध्यात्मिक साधना द्वारा इन आदिम प्रवृत्तियों से बच सकता है पर तब भी सब लोग अपने ऊपर अधिकार जमाने वाली उन सहजात प्रवृत्तियों के प्रभाव से नहीं बच सकते। अधिकांश लोग वासनाओं के दास होते हैं। जब हम वासनाओं के वशीभूत होते हैं तब हमारे लिये पदार्थों को सही रूप में देखना असम्भव हो जाता है। जो कुछ अच्छा लगता है उसी में हम विश्वास कर लेते हैं। इसलिये हमारा कर्त्तव्य है कि अच्छी बातों को देखें और बुरी बातों की ओर ध्यान भी न दें। सब से अधिक दुष्ट मनुष्य के

अन्दर भी उस दिव्य-शक्ति की एक चिनगारी होती है। सनातन सत्य सब लोगों के भीतर छिपे रहते हैं पर वे कुछ ही लोगों के अन्दर प्रकट होते हैं।

एक मित्र ने जो मुझे बीस वर्ष से अच्छी तरह जानता है मेरे विषय में व्यंग करते हुए कहा कि मुझे क्रोध नहीं आता, मुझ पर मूर्खों का प्रभाव नहीं पड़ता और मैं मूर्खों तथा पापियों को प्रसन्नता-पूर्वक सहन कर लेता हूँ। मैं समझता हूँ कि मित्र का यह कथन असत्य नहीं है। भले और बुरे मनुष्यों के बीच जो भेद है उसे समझना आसान नहीं है। विचारों को सैद्धान्तिक रूप से भले और बुरे की श्रेणी में रक्खा जा सकता है पर मनुष्यों को नहीं क्योंकि प्रत्येक मनुष्य के अन्दर किसी न किसी अंश में अच्छाई और बुराई, उच्चता और नीचता, सचाई और झूँठ बने रहते हैं। इसके अतिरिक्त सत्य और असत्य के विषय में समाज के विचित्र विचार होते हैं। सरल और व्यक्तिगत सम्बंध अनुचित समझे जाते हैं। परन्तु ऐसे कार्य जिनसे राष्ट्रों में युद्ध छिड़ जाते हैं उचित माने जाते हैं। कठोरता, धोखा, और शोषण इन तीनों चीजों को क्षमा कर दिया जाता है पर अगर कुपात्र से अच्छी तरह प्रेम किया जाय तो निन्दा की जाती है। पर वास्तव में कुपात्र से प्रेम करना दुर्भाग्य ही है, कोई अपराध नहीं। पाखण्डियों की अपेक्षा स्वेच्छाचारियों को महात्मा बनाना सरल है। आसीम करुणा के लिये आसीम ज्ञान आवश्यक है। पापी लोगों के लिये निन्दा या आलोचना की आवश्यकता नहीं। वे तो इतना ही चाहते हैं कि लोग उनको समझें—कुछ आराम पहुँचावें और थोड़ा सा सम्मान करें। जब वे घबड़ाये हुए होते हैं, जब अपने दुष्कर्मों के दबाव और संसार की घृणा के कारण उनकी शक्ति क्षीण हो जाती है उस समय उनको किसी ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता होती है

जिस पर पूर्ण विश्वास किया जा सके। मानव-प्रेम के बिना उनका काम नहीं चल सकता। उन्हें दया की जरूरत नहीं जो कि घृणा का ही एक रूप है। वे ऐसी सद्-भावना चाहते हैं जिसमें भूत काल की परवाह न करके भविष्य की ओर ध्यान दिया जाता है। अन्त तक विनाश के पथ पर चलने की आवश्यकता नहीं। मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण में परिवर्तन करके हम अपने शीघ्र होने वाले विनाश को रोक सकते हैं और इस प्रकार अपने लिये नवीन भाग्य निर्माण कर सकते हैं। यह हमारे हाथ में है कि हम पतन की ओर झुकें या उन्नति की ओर अग्रसर हों। मुझे पूर्ण विश्वास है कि प्रेम में सच्चा परिवर्तन करने की शक्ति है। मित्र एक समीक्षक का स्थान ले लेता है जो हमारी वासनाओं को खोलकर रख देता है और उनको दूर कराने में सफल होता है। कुछ लोग शान्त रहते हैं क्योंकि उनके पास कहने के लिये कुछ नहीं होता। कुछ लोग इसलिये शान्त रहते हैं क्योंकि उनके पास कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है जिससे कुछ कहें। एक सच्चे मित्र के सामने नीच से नीच व्यक्ति भी अपना हृदय खोलकर रख देगा और इस प्रकार अपने चित्त को हलका कर लेगा। उसको अन्धकारपूर्ण यथार्थ अपने वास्तविक स्वरूप में देखने में तथा उसका सामना करने में भय नहीं लगता क्योंकि मनुष्य की आत्मा निश्चय ही एक अति प्रिय वस्तु है। कोई मनुष्य न तो जन्म से दुष्ट होता है और न ऐसी ही बात है कि उसका सुधार न हो सके। कोई मनुष्य न तो आत्मा को दबा सकता है और न उसे हमेशा के लिये धोखे में रख सकता है। मनुष्य के जीवन में सब से बड़ी वस्तु उसका सच्चा स्वरूप है। जीवन के प्रति ऐसा दृष्टिकोण निष्क्रियता और दोषों की ओर ध्यान नहीं देता। सेन्टपाल का कथन है "जब अन्य लोग भूल करते हैं तब प्रेम प्रसन्न

नहीं होता। प्रेम भलाई को देखकर प्रसन्न होता है, हमेशा धीरे-धीरे प्रकट होता है, हमेशा अच्छी बातों में विश्वास करना चाहता है और हमेशा आशावान और धैर्यशाली होता है। जिन लोगों से हम प्रेम करते हैं उनके कार्यों की आलोचना करना बड़ा कठिन है। लेकिन सच्चे मित्र से हम ऐसी ही आशा रखते हैं। जैसे ही मित्र गलतियाँ बताता है वैसे ही मैत्री-सम्बन्ध मजबूत हो जाता है। एक सच्चा मित्र केवल खोज नहीं करता। वह भली भांति जाँच-पड़ताल कर लेता है और हृदय में प्रवेश करता है। यद्यपि इस प्रकार की निर्दयतापूर्ण व्याख्या बड़ी कष्टदायक है। तब ज्ञान और सुधार द्वारा ही मानसिक शान्ति प्राप्त की जा सकती है। हमें अपने विचारों में पूर्ण सच्चाई रखनी चाहिये और परिस्थितियों के अनुकूल अपने में सुधार कर लेना चाहिये। हमें अपने साथ कभी झूँठ नहीं बोलना चाहिये। अगर यह बात ठीक है कि जब तक हम पूर्ण रूप से प्रेम नहीं करते तब तक पूर्ण रूप से जान नहीं पाते तो यह बात भी ठीक है कि जब तक हम पूर्ण रूप से नहीं जानते तब तक पूर्ण रूप मे प्रेम भी नहीं करते। लज्जा का भाव हमें रोक लेता है। ऐसा जान पड़ता है कि हम अपने को खो रहे हैं; अपने घातक दोषों को प्रकट कर रहे हैं, अपने को धोखा दे रहे हैं। लेकिन सच्चे प्रेम में ऐसी भावनाओं को स्थान नहीं। हालांकि साधारण तौर से यह विचित्र और अनुचित जान पड़ता है तथा कभी-कभी उसे प्रेम समझना भी कठिन होता है। पर बुरा लगने की कोई बात नहीं। मित्र के विचारों में आलोचना या द्वेषपूर्ण निर्णय नहीं होता। जिन बातों से हमें कष्ट होता है अगर उनको कह दिया जाय तो फिर वे कष्ट नहीं पहुँचातीं। जब तक हम सत्य की खोज नहीं कर लेते तब तक बाहरी दुनियाँ में भटकते

रहेंगे और भीतर से भी खोखले बने रहेंगे। अहंकार और आत्म-प्रेम को त्यागना और यथार्थ को खोलकर सामने रख देना—इन बातों मे संताप और दुःख होता है। पर यह महत्वपूर्ण है। महाभारत के अनुसार सत्य उच्च श्रेणी का तप और त्याग है। उसमें लिखा है "भले लोगों के लिये सत्य स्वाभाविक होता है। सत्य सनातन कर्तव्य है। प्रत्येक मनुष्य को श्रद्धापूर्वक सत्य के आगे सिर झुकाना चाहिये। सत्य ही मनुष्य के लिये सब से बड़ा आश्रय है। सत्य कर्तव्य है, सत्य तपस्या है, सत्य योग है। सत्य सनातन ब्रह्म है। सत्य उच्च श्रेणी का त्याग समझा जाता है। प्रत्येक पदार्थ सत्य पर निर्भर है। असत्य और सादृश्य के स्थान पर सत्य और यथार्थ के आधार पर ही स्थायी मैत्री और आध्यात्मिक जीवन की नींव डाली जा सकती है। इस प्रकार की मैत्रीपूर्ण बातों का ऐसे आध्यात्मिक प्रदर्शन से कोई सम्बन्ध नहीं जिसमें पापी अपने उस पापी जीवन का बड़ी विशदता के साथ वर्णन करता है जिससे वह मुक्त हो चुका है और इस प्रकार वह अपनी आध्यात्मिक प्रगति को ही सूचित करना चाहता है।

ऐसे कुछ दुःखी लोगों का मिलना और उनका विश्वास प्राप्त करना सौभाग्य की बात है जो असहाय और पथ-भ्रष्ट हैं तथा जिनकी संसार में संख्या भी अधिक है। समाज द्वारा दण्डित और निराश्रित लोगों का जीवन उन लोगों की अपेक्षा अधिक आकर्षक होता है जो जीवन में सफलता प्राप्त कर लेते हैं क्योंकि उनके जीवन में हमें सौन्दर्य, रहस्य और विषाद के दर्शन होते हैं। यद्यपि निराश और पद-दलित लोगों के अन्दर कोई विशेषता नहीं होती पर हम उनके अन्दर अजेय आत्मा का भाग्य या परिस्थितियों से संघर्ष देखते हैं। चाहे कितने ही

कष्ट और असफलताएँ क्यों न आवें आत्मा कभी विदीर्ण नहीं होती। हम नहीं जानते कि विश्वास क्या वस्तु है और वह किस स्थान से—हृदय से या मस्तिष्क से—आता है तथा दूसरों के पास किस मार्ग से जाता है। हम नहीं जानते कि वह आँख में प्रकट होता है या शब्दों द्वारा कान में। अधिक स्वाध्याय या मनन से भी वह नहीं प्राप्त किया जा सकता। यह एक आश्चर्यजनक वरदान है जो एक को प्राप्त है और दूसरे को नहीं। शीघ्र ही मैंने अनुभव किया कि किसी गुण के न होते हुए भी मुझे उस बहुमूल्य वरदान का एक कण प्राप्त है। हिन्दुओं के विषय में लोगों के मन में बड़ी विचित्र भावना है कि जो लोग दर्शन-शास्त्र में रुचि रखते हैं उनका सारा ध्यान आध्यात्मिक बातों में रहता है। प्रसन्नता की बात है कि मेरे पास जिन लोगों के पत्र आये हैं उनमें कुछ ऐसे लोगों के पत्र हैं जो मुझसे मुसीबत के समय परामर्श और सहायता चाहते हैं। इनमें से कुछ पत्र मूर्खतापूर्ण, कुछ करुणा-जनक और कुछ दोनों ही प्रकार के रहे हैं। इन पत्र-व्यवहार करने वालों में कुछ ऐसे झक्की और सनकी लोग भी हैं जो संसार की बुराइयों के लिये अपना ही इलाज सही समझते हैं। कभी-कभी हमें अपने पुराने मित्रों के लम्बे पत्र भी मिलते हैं, कुछ ऐसे लोग भी होते हैं जो पत्र-व्यवहार द्वारा हमारे निकट सम्पर्क में आगये हैं। कुछ ऐसे अपरिचित लोग भी होते हैं जो न अपने बारे में कुछ जानते हैं और न औरों के बारे में। मेरे सम्बन्धियों में आयु, श्रेणी, व्यवसाय, पद और शिक्षा का कोई भेद नहीं रहा। कुछ असहाय और पद-दलित लोगों के साथ या तो केवल मैंने ही या सबसे पहले मैंने ही सहानुभूति दिखलाई है। यह सोचकर मुझे प्रसन्नता होती है। कभी-कभी दूसरे लोगों में मेरी रुचि इतनी स्वाभाविक और दृढ़ रही है कि लोगों

ने उसको गलत समझा है। कुछ ऐसे मामले भी आये हैं जब अधिक से अधिक प्रयत्न करने पर भी वे फल नहीं प्राप्त हुए जिनकी मैंने आशा की थी। वे केवल इस बात को सूचित करते हैं कि मैंने उन समस्याओं को बुद्धिमानी और योग्यता के साथ हल नही किया।

तब भी मुझे प्रसन्नता है कि जीवन में मेरा बहुत से लोगों के साथ सम्पर्क हुआ है। मैं इस बात में विश्वास नहीं करता कि कोई काम अचानक या दैवयोग से हो जाता है। प्रकृति की शक्तियों के द्वारा इच्छाएँ गुप्त रूप से कार्य करती रहती हैं। कभी-कभी देखने में सामान्य घटनाएँ हमारे जीवन में आशा से अधिक महत्व-पूर्ण सिद्ध होती हैं। आध्यात्मिक आकर्षण भी एक सत्य वस्तु है। कुछ लोगों के प्रति हम क्यों आकर्षित होते हैं ? इसका पूर्ण उत्तर कभी नहीं दिया जा सकता। पर हम उत्तर दिये बिना भी नहीं रह सकते। यह उत्तर मनोरंजक भी होते हैं। प्रसिद्ध विचारक गेटे का कहना है कि सौन्दर्य अपने गुणों को कभी नहीं समझ सकता। यह आकर्षण भी आंशिक रूप में ही समझाया जा सकता है। कुछ लोग हमारे साथ बड़ी भक्ति दिखलाते हैं। पर उसका कारण अज्ञात होता है। राग-द्वेष के सच्चे कारण हमारे हृदय के भीतर छिपे रहते हैं। उनका तर्क या बुद्धि से कोई सम्बन्ध नहीं। हम उनका कारण नहीं बतला सकते। मैंने अपने जीवन में आश्चर्यजनक अनुभव किये हैं। उन अनुभवों के द्वारा मैंने अपने स्वभाव और सच्चे रूप को समझा है। उन अनुभवों के द्वारा मेरा जीवन वर्तमान समाज-व्यवस्था के अधिक अनुकूल हो गया है, अधिक उलझ गया है, और अधिक कठिन होते हुए भी अधिक महत्वपूर्ण तथा सम्पन्न हो गया है। उन्होंने मानव-प्रेम और सद्भाव की लड़ियाँ मेरे जीवन में जोड़ी हैं, मुझे अत्यधिक आनन्द और दुःख प्रदान

किये हैं और अब वे मेरे जीवन में इस प्रकार घुल-मिल गये हैं कि उनको अलग नहीं किया जा सकता। एक दृष्टि से उन्होंने मेरे भाग्य का सच्चा निर्माण किया है।

मुझे भी जीवन में चिन्ता, कष्ट और दुःख मिले हैं। परंतु इसके साथ ही इतने अधिक वरदान भी प्राप्त हुए हैं जिनके मैं योग्य न था। इनमें से मुख्य वह स्नेह और सहानुभूति है जो मुझे दूसरे लोगों से विशेष मात्रा में प्राप्त होती रही है इन सबके प्रति भी मुझे कृतज्ञता प्रकट करनी है। महात्मा बुद्ध और ईसा से लेकर साधारण मनुष्य तक आज तक जितनी महान आत्माएं हुई हैं उन्होंने मन, हृदय और स्वभाव में काफी दोष होते हुए भी मानवता के भार को हलका किया है तथा ऐसी आशाओं की वृद्धि की है जिनके बिना वह भार दुर्गम यात्रा में गिर पड़ता। अगर हम उन महान आत्माओं का थोड़ा सा भी अनुकरण करना चाहते हैं तो हमें दुर्बलों की सहायता करनी चाहिये और दुःखियों को सुख पहुँचाना चाहिये। मनुष्य को यह विचार हमेशा दुःख पहुँचाया करता है कि वह संसार के दुःख का बड़ा भाग अपने ऊपर नहीं ले पाता तथा गरीब, कमजोर और दुःखियों की कोई सहायता नहीं कर पाता। मनुष्य को अपना जीवन एकान्त में व्यतीत करने पर भी कोई सन्ताप नहीं होगा अगर उसे कभी-कभी अपने मनोरंजन के लिये कोई बालक मिल जाया करे और ऐसा दुःखी मनुष्य मिल जाया करे जिसकी वह सेवा कर सके तथा उसे प्रसन्न करके उसके हृदय में नवीन आशा का संचार कर सके।

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानाम् प्राणिनाम् आर्तिनाशनम्॥

——— भागवत ९–(११–१२)